1/78

सो
म
सी

tharahkardu.in
Scanned with CamScanner

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी
❁ शिमला ❁

हिमाचल प्रदेश की ललित कलाओं परम्पराशील संस्कृति प्रादेशिक भाषा पहाड़ी व उसकी उपभाषाओं तथा हिन्दी संस्कृत उर्दू भाषाओं और उनके साहित्यों के विकासार्थ

राज्य सरकार द्वारा स्थापित स्वायत संस्था

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का
त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 4 | जनवरी, 1978 | अंक 1

प्रबन्ध-सम्पादक
एच० सी० पराशर

सम्पादक
डा० बंशी राम शर्मा

सहयोगी
सरोज शर्मा

आवरण
तिलक राज

प्राप्ति स्थान :
हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परीमहल, शिमला १७१००९

Scanned with CamScanner

सोमसी

वर्ष 4 अंक 1

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्रकाशित रचनाओं को पूर्ण अथवा आंशिक रूप में उद्धृत करने के लिए सचिव, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परी महल, शिमला-9 की अनुमति अनिवार्य है।

वार्षिक चंदा–१२ रु०

एक प्रति–३ रु०

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक विषय	लेखक	पृष्ठ
1. सम्पादकीय		(i)
2. कांगड़ी लोकगीतों में प्रतीक-योजना	—डा० गौतम 'व्यथित'	1
3. कर्मवीर हकू रावत	—मदन मोहन कमल	13
4. शब्द श्री		17
5. सिरमौरी ताल : एक ऐतिहासिक स्थल	—पी० के० शरण	19
6. हिमाचल का पञ्जल क्षेत्र	—अश्विनी गर्ग	23
7. पुस्तक समीक्षा		25
8. Studies in the Systematics of Himachali Linguistics	—Dr. Siddheshwar Varma	32

यशपाल परिशिष्ट

क्रमांक विषय	लेखक	पृष्ठ
9. क्रान्तिकारी यशपाल	—डा० अभिमन्यु	35
10. यशपाल—कुछ पुरानी यादें	—देशराज डोगरा	40
11. क्रान्ति और कलम के धनी—यशपाल	—प्रेम पखरोलवी	46
12. यशपाल—कहानीकार के रूप में	—डा० कृष्णा रैणा	52
13. अप्सरा का श्राप : एक मूल्याङ्कन	—डा० ओम प्रकाश सारस्वत	57
14. झूठा सच—बदलते समाज का दर्पण	—अमरजीत कौर	61
15. यशपाल जयन्ती समारोह		66
16. भारतीय राजभाषा सम्मेलन, 1978		74

सम्पादकीय

सामाजिक परम्पराएं निरन्तर तथा अबाध होती हैं। किसी समाज को परम्पराओं के ऐतिहासिक कालों में विभाजित करके अध्ययन करना अपेक्षाकृत कठिन कार्य होता है परन्तु विश्व इतिहास का काल-विभाजन समाज-विशेष की महान् घटनाओं के बंटवारे के आधार पर सम्भव हो सका है। संस्कृतिक तथा ऐतिहासिक घटनाएं मौखिक तथा लिखित रूप से सुरक्षित रहती हैं। लोक संस्कृति में लम्बे समय तक लोकमानस पर उभरने वाली विशिष्ट घटनाएं आचार-व्यवहारों तथा लोक-साहित्य में घर किए रहती हैं परन्तु मौखिक साहित्य को लिपिबद्ध करने के लिए समय-समय पर साहित्यकारों का अवतरण समाज-हित के लिए आवश्यक होता है। वर्तमान समय में वाङ्मय का लिखित रूप विशिष्ट माना जाने लगा है क्योंकि वह सामाजिक विचारधारा को अपेक्षाकृत लम्बे समय तक सुरक्षित रखता है अतः साहित्यकार समाज के मानस-पटल की घटनाओं तथा विचारों का नियन्ता तथा अधिष्ठाता होता है।

कोई भी साहित्यकार मात्र कल्पना के संसार में जी कर उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता, उसके अन्तस् में सामाजिक परिवेश का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में विद्यमान रहता है जिसका दिग्दर्शन उसकी रचनाओं के माध्यम से सर्वथा सम्भव है। लौकिक साहित्य जहां समाज के विभिन्न भौतिक अंगों की छाप लिए रहता है वहां धार्मिक साहित्य में संस्कारों की छाप अधिक दृष्टिगोचर होती है।

Scanned with CamScanner

साहित्यकार का सम्बन्ध कल्पना-जगत से अधिक होता है अतः वह सामाजिक अनुभवों को अपनी रचनाओं में इस प्रकार सन्निविष्ट करता है कि अनेक घटनाओं का मिश्रित रूप कुछ नई घटनाओं तथा कथानकों की सृष्टि करता है। जितना ही अधिक कोई लेखक जीवन का गहन पर्यवेक्षक, कल्पना-प्रवण तथा सम्वेदन-शील होगा, उतना ही बड़ा साहित्यकार हो सकेगा। इन सभी बातों के लिए संस्कार, अच्छी शिक्षा तथा ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा का होना आवश्यक है। यही कारण है कि समाज में उच्च कोटि के साहित्यकारों का अवतरण विशेष घटना होती है।

हिमाचल प्रदेश प्राचीन काल से ऋषि-मुनियों तथा देवताओं की धरती रहा है। यहां वैदिक तथा इतर पौराणिक साहित्य का सर्जन हुआ है। महर्षि वेद व्यास ने अठारह पुराणों की रचना इसी क्षेत्र में की थी, ऐसा माना जाता है। हमारा लोकसाहित्य तथा लोक संस्कृति विशिष्ट हैं और उनमें प्राचीन गरिमा के दर्शन किये जा सकते हैं परन्तु विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश की देन का इतिहास पुराना नहीं है। यहां कुछ कवियों को राज्याश्रय तो प्राप्त हुआ परन्तु उन्होंने राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नहीं की। हिन्दी अथवा स्थानीय भाषाओं में हमें स्तरीय देन का अभाव सा प्रतीत होता है। हिमाचल के प्रथम हिन्दी साहित्यकार स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ह जिन्होंने कहानी तथा निबन्ध के क्षेत्र में आदर प्राप्त किया है। इसके पश्चात् यद्यपि वर्तमान समय में हिन्दी लेखन के क्षेत्र में अनेक साहित्यकार प्रयत्नशील हैं परन्तु जो स्थान स्वर्गीय यशपाल का है, वह हमारे लिए ही नहीं, बल्कि, सम्पूर्ण हिन्दी जगत के लिए गौरव तथा सम्मान-प्रतिष्ठा का है। उक्त दोनों साहित्यकारों से प्रेरणा प्राप्त करके प्रदेश के परवर्ती साहित्यकार उल्लेखनीय कार्य कर सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

स्वर्गीय यशपाल की 74 वीं जयन्ती उनके मूल निवासस्थान ग्राम भूंपल, जिला हमीरपुर में राज्यस्तरीय समारोह के रूप में गत 3 दिसम्बर, 1977 को मनाई गई थी। सोमसी का प्रस्तुत अंक इस महान् साहित्यकार को समर्पित है तथा उक्त समारोह पर दिए गए कतिपय महत्वपूर्ण भाषणों के अंश यथावत् इस अंक में सम्मिलित किए गए हैं। इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री अगले अंक में भी प्रकाशित की जाएगी। इस महान् क्रांतिकारी ने स्वतन्त्रता-संग्राम के अपने संस्मरणों के माध्यम से स्वतन्त्रता के इतिहास का मनोहारी वर्णन किया है तथा अपने उपन्यासों और कहानियों के द्वारा प्रदेश के जन-जीवन को साहित्य-जगत के सामने प्रस्तुत किया है। लखनऊ में रहते हुए इन्हें अपने सुन्दर हिमाचल की कितनी याद थी, यह उनके साहित्य से स्पष्ट हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के इस साहित्यकार को हमारा सादर नमन्!

—बंशी राम शर्मा

कांगड़ी लोक गीतों में प्रतीक–योजना

—डा० गौतम शर्मा 'व्यथित'

क–लोकसाहित्य में कल्पना

लोकसाहित्य में कल्पना का स्वरूप सहज तथा नैसर्गिक है। जीवन की मूर्त अभिव्यक्तियों के विधान में जो सहज सौंदर्य और सुषमा है वह इस साहित्य में प्रबलता से अभिव्यक्त हुई है। वह प्रबलता जीवन क्षेत्र की द्योतक है और छन्द, गति, यति, शब्द, साधन, तथा वस्तु वर्णन सब में परिव्याप्त मिलती है। इन्होंने आवेगों को प्रबल होने पर भी नग्न नहीं होने दिया है। प्रतीक लोक-व्यवहार में सदा से आते रहे हैं। किसी शब्द के प्रतीक रूप में विकसित होने के लिए लोक-विशेष की सांस्कृतिक चेतना का बड़ा भाग होता है। वस्तुतः वे किसी राष्ट्र के जातीय संस्कारों का परिणाम होते हैं। गोपनीयता की दृष्टि से यौन भावों के लिए प्रयुक्त प्रतीक लोक मानस की सब से सुन्दर सूझ हैं। लोक साहित्य में उपलब्ध प्रतीक प्रयोग को शास्त्रीय प्रतीक प्रयोग का शुद्ध रूप नहीं कहा जा सकता। इस में केवल सांकेतिक भाषा का समास-रूप ही मिलता है वे सादृश्य व साधर्म्य के आधार पर भाव को अर्थता ही प्रदान नहीं करते वरन् लोक की मर्यादा की रक्षा भी करते हैं।

ख–विवेच्य गीतों में प्रतीक प्रयोग

विवेच्य गीत कांगड़ा लोकमानस की स्वच्छन्द रचनायें हैं। इनमें न तो किसी प्रकार के दर्शन का आग्रह है न किसी सम्प्रदाय विशेष की संपृक्ति ही। प्रेम इन के जीवन का मूलाधार है। इन गीतों के रचयिताओं ने केवल उन्हीं प्रसिद्धियों को स्वीकृत किया है जिन में प्रेमाभिव्यंजना की समृद्ध क्षमतायें थीं। इन के ऐसे प्रयोगों में भी प्रतीक सापेक्ष अन्वयन का प्रकृष्ट रूप नहीं उभर पाया है।

किसी वस्तु की व्याख्या करना, उसे स्वीकृत करना, पलायन का पथ प्रस्तुत करना, सुप्त अनुभूतियों को जागृत करना व अलंकरण का साधन होना काव्य में प्रतीक के मुख्य कार्य हैं। विभिन्न विद्वानों ने प्रतीक के कार्य एवं भेद की चर्चा करते हुए उस के अनेक भेद माने हैं, परन्तु विवेच्य गीतों में अनायास रूप में प्रयुक्त प्रतीकों को निम्नलिखित वर्गों में रख कर परीक्षित किया जा सकता है:—

ग–प्रतीक रूप

क–कविप्रसिद्धिपरक प्रतीक,
ख–पौराणिक प्रतीक,
ग–अलंकार-परक प्रतीक, तथा
घ–काम-परक प्रतीक।

क–कवि प्रसिद्धि परक प्रतीक

कविप्रसिद्धियां लाक्षणिकता का शक्तिकोष हैं । उन में विभिन्न सादृश्यों का संगुंफन रहता है । ऐसे ही लाक्षणिक प्रयोगों की आधारशिला पर प्रतीकों का अर्थ ध्वनित होता है । प्रयोग प्रक्रिया में अनेक प्रसिद्धियां प्रतीक रूप में प्रतिष्ठित हो जाती हैं । प्रेम के सांसारिक और आध्यात्मिक महत्व-प्रतिपादन के लिए परम्परा से इन प्रसिद्धियों का प्रयोग होता आया है । इन गीतों में उपलब्ध प्रतीक को इस रूप में दो वर्गों में रख कर परीक्षित किया जा सकता है :–

1. वनस्पति संसार के प्रतीक,
2. जीवधारी संसार के प्रतीक ।

१. वनस्पति संसार के प्रतीक

भारतीय संस्कृति प्राकृतिक आंचल में अंकुरित तथा विकसित हुई है । इसमें वृक्षों को आध्यात्मिक गौरव के संचेतन सूत्र माना गया है । वन्य वृक्षों यथा वट, विल्व, अशोक, आम, नीम, कदली, कदम्ब, तुलसी तथा कल्प वृक्ष की उपादेयता अनन्य है । पुष्पों का भी विशेष महत्त्व माना गया है । वृक्ष-पत्रों दूर्वा, फूल आदि की भी आध्यात्मिक महिमा है । समष्टि में समस्त प्रकृति (वनस्पति जगत) को देव रूप में परिकल्पित कर लिया गया है जिस के विविध संदर्भों की अर्थ-व्यंजना साहित्य में परम्परा से होती आई है ।

विवेच्य गीतों का क्षेत्र प्रकृति की रम्य वन्यस्थली है अतः लोककवि वनस्पति सम्बन्धी अलंकारों से असंपृक्त नहीं रह सका है । उसने अपने भावों की स्पष्टता एवं प्रतिपादना हेतु वनस्पति-परक प्रतीकों का सहज प्रयोग करके अपने कथ्य की व्यंजना में इच्छित सिद्धि प्राप्त की है । स्वरूप में ऐसे प्रयोग लोकानुरूप हैं ।

प्रेम इन गीतों का मुख्य विषय है । इन में रूप सौंदर्य की व्यंजना हेतु चम्बे दी कली, चम्बा फल, कचियां कलियां, मरूऐ दा फुल, कीकर-दरेकां, सेम्बल-पुष्प, नागरबेल, अँनार, खटनालू, रस भरी डालियां, मेंहदी, दाख, नीम्ब आदि प्रसिद्धियों का प्रयोग बाहुल्य है । कुछ उद्धरण देखिये–

क–चम्पा पुष्प तथा कली: चम्पा-फूल अपने अद्वितीय वर्ण तथा सुगन्ध के कारण लोक कवि को अत्यन्त भाया है । उस ने पदे-पदे लोकनायिका की सौंदर्य व्यंजना में इस को प्रतीक रूप में प्रयुक्त करना अत्यन्त सार्थक माना है । जहां यौवन के पूर्ण ज्वार को व्यक्त करने के लिए उस के विकसित रूप को लिया जाता है, वहां अवयस्कता के लिए चम्पाकली के प्रयोग एकदम मन को छूते हैं ।

विरहिणी नायिका के लिए चम्पा डाली का प्रयोग देखिये–
चम्बे दीये डालड़िये मुइये बेआस न हो,

ओहने अज आई पुज्जणा,
तू वणी-वणी खिड़ी-खिड़ी पौ ।

पुत्री के लिए––

'बापुए लाया बाग, खिड़ पई चम्बा कली' ।

सम्बल फूल–

प्रसव पीड़िता स्त्री के मुख पर आई सहज लालिमा की व्यञ्जना सेम्बल-पुष्प के प्रतीक–प्रयोग द्वारा कितनी स्वाभाविक तथा सार्थक बन पड़ी है। द्रष्टव्य है :–

'अजि सिम्बले दा फुल्ल गहरा घनेर, गहरा घनेर,
छडदे नी देवते, मंदला किस घरें बजेया ।,

कच्ची कली:–लोकनायिका के यौवन की अपरिपक्वता तथा अवयस्कता व्यंजित करने के लिए 'कच्ची कली' का प्रयोग भी कम सार्थक नहीं :–

'कच्ची कली तोड़ी गिया, बिच बणे सुट्टी गिया।
पापां ते नीं डरया जी बेईमान लोका ।'

झूमती लहराती मस्त कली को तोड़ना और मसल कर वीरान में फेंक देना, ऐसा करते समय किसी प्रकार के पाप का विचार मन में न आना, अवयस्कता से अवैध प्रणय, सम्बन्ध स्थापित कर अपनी वासना की पूर्ति पर उसे निराश्रित छोड़ने के भावों की कितनी प्रतीकात्मक व्यंजना इस प्रयोग में सहजता से उपलब्ध है । इसी प्रकार:–

'कच्चियां कलियां न तोड़ राजे नौकरा, पकणे दे दिन चार । तथा,
'कुन्नी सैंह बाग लगाया, कुन्हीं सैंह तोड़ियां कलियां ।

पुष्प: रूपवती के सौन्दर्य तथा आशा की व्यंजना हेतु लोककवि ने पुष्प (फुल्ल) का भी प्रयोग स्थान स्थान पर किया है :–

'फुल्लां दी भरी चंगेर चम्बे दी इक कल्ली,
खण्ड दी भरी परात, मिसरी दी इक डली,
तू मेरी चंचल नार, विसरे न इक घड़ी ।

यौवन की प्रखरता आम्रबौर, कुसुम्भा, बन काई, आदि के प्रयोग द्वारा कितनी सजीव बन पड़ी है, जरा देखिये–

आम–

अम्बुआ भी फूले, कुसुम्भा भी फूले,
बन में फूले बनकाई,
सुहागन पिया अपने को मना ले ।

इसी प्रकार चम्बा, मरुआ, गुलाब का प्रयोग देखें:–

'कम्बा सिजदी माहिया, मरुआ सिजदी माहिया,
मंझ भर सिजदो गुलाब ।

लोक-नायिका के सौंदर्य के सहज स्वभाव एवं आकर्षण-शक्ति को अभिव्यक्ति देने हेतु लोककवि द्वारा मोतिया (खटनालू) फूल का प्रयोग कितना सार्थक है—

'फुल खटनालुए दा, लाहे लै सौहरे दी नूंह
कि गिरठ भर सौहरे दी नूंह, कि फुल खटनालुए दा ।'

इस पुष्प के धवल वर्ण में लाल रेखाओं का निखार इस के सौंदर्य को दुगना कर देता है । सरस सुगन्ध की दृष्टि से भी यह पुष्प छोटा होने पर भी अत्यन्त मधुर है । बहु नायिका के कद में छोटेपन तथा उसके अद्वितीय गुणों की व्यंजना हेतु इस पुष्प का प्रयोग अत्यन्त सार्थक हुआ है ।

वृक्ष, फल, लता आदि:—इस दिशा में मरुआ, दरेकां, कीकर, वट वृक्ष, खजूर, नागर बेल, दूर्वांकुर, नारियल छुहारे, दाख, आम आदि का प्रयोगाधिक्य है । मरुआ नायक का प्रतीक है । प्रदेश से लौटे चिर वियोगी पति की रूप-योजना विरहिणी नायिका के मुख से किस प्रकार व्यंजित हुई है, द्रष्टव्य है—

'बारहें जे बरसें कन्त घर आया, आई बैठा ठंडिया छौंआं ।
मरुए दी छौं बड़ी बो घणी, मेरी जान मरुआ पंज पतरं ।।

नायिका-सौंदर्य की व्यंजना हेतु भी मरुआ की डाली का प्रयोग हुआ है —

'लोक तां गलांदे काली काली चैचलों तू तां मरूए दी डाली हो ।'

विरहावस्था तथा ससुराल में अनुभूत व्यावहारिक दुर्बलताओं से व्यथित लोक नायिका की स्थिति को दरेकों के अंकुराने तथा पुष्पित होने के भाव से किस प्रकार सार्थक बनाया गया है—

'दरेकां फुलियां वीरा, दरेकां दी ठंडड़ी छौं ।
वीरा, मिली जायां" ।

कीकर वृक्ष भी अपने रूप तथा आकार की दृष्टि से प्रसिद्ध है । लोकनायिका की यौवनावस्था में आई आकस्मिक शिथिलता की व्यंजना के लिए लोककवियों ने इस प्रसिद्धि का प्रयोग किया है :—

'किकरिये झुलरदिये, कुन्हीं मरोड़्या तेरा डालू ?' इसी प्रकार:—

वट वृक्ष:—'झुल्ल बो बड़े दिया पतरा
सुञ्चेया पतरा, तू मेरे सजणा लाया ।

खजूर—'हरिये नी भरिये सब्ज खजूरे
पत्त जिन्हां रे प्यूले हो ।'

दूर्वा—तेरे बौए दें सों दुब,
तेरियां माईयां दें मने दुब,
कि बाला लोरी लै ।

नारियल—सुपणे च सस सुहागण नरेला लई आई ।
दाख—(1) सुपणे च सस सुहागण हरी-हरी दाखां लई आई ।
(2) दाखां दे झुंझड़ लाल, इक झुंझड़ पकी बो रिहा,
खाणे वाले लोभी हजार, इक लोभी छिपी बो रिहा ।

२. जीवधारी संसार के प्रतीक

जीवधारी संसार के प्रतीक:—भारतीय जन-जीवन पशुपक्षियों के निकटतम सम्पर्क में रहा है । उनके सम्बन्धों की रागात्मिकता से वह विशेष प्रभावित हुआ है,इसीलिए उन्हें जनजीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । पशु-पक्षी-पूजन की परम्परा इसी का परिणाम है । ऐरावत, कामधेनु, मृग, गरुड़, हंस, चक्रवाक, हारिल, चातक, चकोर, भ्रमर आदि पक्षियों की स्वभावगत विशिष्टताओं को भी जन-जीवन, लोक साहित्य तथा कला एवं साहित्य में स्थान दिया गया है । इनकी क्रियाओं एवं व्यापारों को मानवीय संवेदना से युक्त प्रदर्शित किया गया है । कवि-प्रसिद्धियों में से संवेदनात्मक तत्व अपने उच्चतम रूप में विकसित हुआ है । इन पक्षियों में प्रणय का कोई न कोई पक्ष इतना विशिष्ट रहा है कि कवि उसे प्रेमाभिव्यंजना के विशुद्ध माध्यम के रूप में स्वीकार करते रहे हैं । विवेच्य गीतों में भी पशु-पक्षियों सम्बन्धी कवि प्रसिद्धियों का सहज प्रयोग पारम्परिक मिलता है । कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

हंस—

पक्षियों में हंस की प्रणय—निष्ठा, एकाग्रता एवं परम्परागत प्रसिद्धि है । हंस नर-मादा जहां भी रहते हैं, एक साथ रहते हैं । उन्हें पारस्परिक विच्छेद-पीड़ा असह्य है । एक के अभाव में दूसरा तड़प तड़प कर प्राणान्त कर देता है । लोककवियों को हंस विशेष प्रिय रहा है । लोक नायक नायिका के अटूट प्रणय-सम्बन्धों की गहनता को इस प्रतीक द्वारा कितनी सुन्दर अभि-व्यंजना मिली है, जरा देखिये —

'मरी बो जायां मेरियें माए गुमानणी
तुद हंसां दी जोड़ी बच्छोड़ी ए ।'

प्रणयी के रूप में हंस का प्रयोग देखिये—

कालयो कागो, कहलूरयो कागो, तुसां मेरे हंस बच्छोड़े ओ ।
हंसां दे कारण महल पुआंदी, बसी जांदे काले काग ओ ।।

यहां 'काले कौए' क्रूर तथा निष्ठुर व्यक्तियों अथवा प्रतिनायक का प्रतीक हैं ।

कोयल:— रसना-माधुर्य तथा सहज स्वभाव के लिए कोयल प्रसिद्ध है । इन गीतों में पुत्री के स्वभाव, रसना-माधुर्य, प्रेम तथा गृह-सौंदर्य आदि को इस प्रतीक द्वारा व्यंजित किया गया है ।

मेरिय बागां दीये कोयल, बागां छोड़ी कुत्थु चली ए ।
तेरियां बेलडियां झाड़ियां पातड़ियां बागां छोड़ी कुत्थु चली ए ।

पिता का घर उपवन-स्वरूप और पुत्री कोयल ठीक ही तो कही गई है । वही तो उसके घर का शृंगार है । उसका ब्याह कर देने पर घर की सरसता जाती रहती है ।

कूंज:– कूंजां नामक पक्षी भी प्रणय में अपना साम्य नहीं रखता । ये जहां कहीं भी उड़ती, बसती, चुगती हैं तो समूह रूप में । वि च्य गी ों में इसका प्रतीक रूप में प्रयोग खिये :–

1. उड़-उड़ कूंजड़िये चिकनी बूंदा मेघा बरसे ।
2. कूंजा जाई पईयां बरोट, चिट्टे दंद गुलाबी होंठ, इक पल बई जीयां देयोरां ।
3. उड़-उड़ कूंजड़िये जिन्द रैहंगी, फिरी मिली लैंगे ।

कूहकू:–कूहकू भी प्रेमी का प्रतीक है । इस पक्षी के विषय में कई लोक-कथायें प्रचलित हैं । लोक-कवि इस प्रसिद्धि को भावाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त करना नहीं भूला है । यथा :–

बड्डा कूहकू मने मेरे बसेया छोटे ने परीत कियां लाणी । भावी कूहकू कियां बोलदा ?

इस गीत में बडडा कूहकू पति के लिए तथा छोटा दवर का प्रतीक है ।

मीन:– मीन और जल का प्रेम सर्वत्र प्रसिद्ध है। वे जल से विछोह पाने पर तड़प-तड़प कर प्रणान्त कर देती हैं। लोककवि द्वारा इसका प्रयोग देखिये :–

थोड़े-थोड़े पाणियें मछली जे तड़फे, इयां करी तड़फै नौकरे दी नार ।

परदेसी कन्त की पत्नी उसके विच्छोह में मीन जैसी तड़पती है । मीन तो जलाभाव में प्राण खो बैठती है परन्तु विरहिणी तो आस-डोर पर लटकी रिस-रिस मरती है, राह बिसरती, व्यंग्य सहती, इच्छायें दबाती है परन्तु प्राण नहीं निकलते । चिन्ता के स्वभाव तथा कार्य को व्यक्त करने के लिए भी मीन का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। मछली जब कभी भी किसी वस्तु को पानी में गिरता अथवा बहता पाती है तो उसे एक दम टुक-टुक कर खाती है । उसी प्रकार चिन्ता भी मानवजीवन को एक दम समाप्त न कर के उसे घुट-घुट कर मरने के लिए विवश करती है । यथा :–

इक बक्ख खाई लिया जले दिया जलकिया ।
दुआ बक्ख फस्सी रिहा सपड़े दे हेठ औ ।

हिरन-हिरनी:–इन का प्रयोग भी प्रणय-गीतों में पदे पदे हुआ है । यथा:—

1. लोकां दीया बाड़िया हरण गिया, हरणे ता रांवणा बीरा मैं चली ।
2. दिन ओ छोटे राती लमियां होईयां, ओ जिन्दे हिरनियें,
   सई-सई बक्ख लगी जांदे ।

इसी प्रकार शकुन-अपशकुन के लिए भी सिंह, गीदड़, मेंढक, कौआ आदि जीवों का प्रयोग हुआ मिलता है । यथा:–

क–मेरे रामे जो आगम होया, बौए अग्गे सीबा कलाई ।
ख– सुक्की डाली कागा कलावे ।
ग–कंसा हो, सुक्कै खुहें रैणक बोले ।
घ–देहणे अग्गे सिंह गरणाये ।

पौराणिक प्रतीक:—विवेच्य गीतों में अधिकांश पौराणिक प्रतीक कृष्णचरित से सम्बन्ध रखते हैं । राम-चरित तथा शिव-चरित से सम्बन्धित प्रतीक-प्रयोग भी परम्परित हैं । परन्तु कृष्णचरित प्रतीकों की विशद पृष्ठ-भूमि में प्रणय के किसी न किसी पक्ष को प्रस्तुत किया गया है । राधा-कृष्ण के अतिरिक्त रुकमणी, गोपी, कुब्जा का भी प्रणय-प्रसंगों में प्रतीकवत् प्रयोग हुआ है । राम सीता , शिव शक्ति, कंस, रावण, राजा बलि आदि के कथा-प्रसंगों के उदाहरण भी धार्मिक गीतों में उपलब्ध हैं । इन का प्रयोग या तो उपमानवत् हुआ है या ये साधारण प्रसंग में उद्धृत मात्र हुए हैं । कृष्ण, राधा, राम, सीता, शिव शक्ति (पार्वती) के अतिरिक्त अन्य में प्रतीकात्मक-संयोजना-क्षमता कम है अन्य प्रसंगों द्वारा स्थितिबोध को अभि-व्यंजित किया गया है ।

राधा-कृष्ण के प्रतीक:—संस्कार गीतों में राधा-कृष्ण, नन्द-यशोदा, बसुदेव-देवकी आदि का नाम बार-बार आया । सारा लोक नवजात शिशु को कृष्ण तथा राम का रूप मानता है । माता-पिता को नन्द-यशोदा, वसुदेव-देवकी दशरथ-कौशल्या कहा गया है । यथा–

1. काले महीने दीयां न्हेरियां रातीं जन्मेया कृष्ण मुरारी,
   नी मत दिदियां सईयो गालीं नी, गरीबणी दा जाया ।
2. घर बसुऐ दे जन्मेया पुत्र जशोदा पलंग चढ़ी ।
   नंद करदा गौआं दा दान, स्यूने दे सिंग मढ़ी ।
3. बालक जन्मेया मैं सुणया राधके ।

उपर्युक्त उद्धरणों में कृष्ण, राधा, नन्द, यशोदा आदि शब्दों से भले ही अन्य व्यंजनायें निकलती हों, परन्तु ये शब्द लोक-कवि की अन्तश्चेतना में इस प्रकार गढ़ गए हैं कि कभी लोक नायक-नायिका, नवजात शिशु, वर-बहु आदि रूपों में अभिव्यक्ति पाते हैं तो कभी अन्य रूपों में । विवाह गीतों में राधा कृष्ण लोक नर नारी के रूप में इस प्रकार अभिव्यक्ति लिए हैं:–

क—बाहर आ मेरी स्याम सुन्दरी, काहन लग्गा जो आए ए ।
ख—रंग रस लाण पहली कि गोपियां मंगल गाया ए,
गोपियो नि मन लोपियो नी श्याम, मेरा, कृष्ण व्याहूणा आया ए ।
ग—खोहल श्यामा मेरे सरे दीयां मींढियां,
घ—कृष्णे स्हेतड़ी राधा गोरी आई । आदि ।

Scanned with CamScanner

गुजरी गीतों में कृष्ण को रसिक नायक के रूप में भी अनेक स्थानों पर चित्रित किया गया है। झूला, बसन्त तथा होली के प्रसंगों में कृष्ण का ऐसा ही उन्मुक्त और स्वच्छन्द रूप मिलता है। कुछेक प्रयोग प्रस्तुत हैं–

क–कृष्णे कुंज गली मंझ घेर लईयां,
छोड़-छोड़ काहना मेरी बांही न मरोड़, मेरे घर सस स्याणी।
ख–अधी अधी राती चन्द्र करालया मोईना, तारेयां भरी रैन सारी।
मेरया द्वारका देया बासिया, हटी कैंह नी पाया मथरा फेरा।

इसी प्रकार होली गीतों में–

क–मेरे लाला! सब सैईयां खेलण होली,
कहां से आए काहन घनैया, कहां से आई राधा प्यारी।
ख–मेरे स्याम नी आए, मैं तां किस संग खेलांगी होरी।

अन्य उद्धरण कुछ इस प्रकार हैं–

मथुरा-गोकुल:–1. उआर गोकलिया पार मथुरिया बीच में जमना बही,
बही मैं तो कुछ न कही।
2. आई जा ब्रज दिवा ठग्गा।
3. स्यामे दे दर्शन पाइयो नी जमुना कण्ढे जाईयो नी।

कंस:–

कितणे की पुत्र कितणियां कि धीयां,
नी बस्सणा राजे कंसे दीया सीया।

नरसिंह:–

प्रभु कैसे नर सिंह रूप बणाया,
आधा रूप धरा हरी नर का, आधा सिंह सुहाया।

कुब्जा:–जेठ दौर जब चढ़ी जुआनी अब क्या करे जिया।
स्याम मेरा कुब्जा बस पिया, क्या होयें हमार किया।

राम-सीता परक प्रतीक:–

क. हरे हरे गोए अंगणे लपानियां, सुच्चा चौक दुआयो राम।
बडडे भाग जिसा माता कुसल्या दे, जिन्हा बेटा रामचन्द्र जाया राम॥

ख. बड्डे भाग जिस तुलसिया दाईया दे
जिन्हां हरिकुण्ड नुहाये राम।

ग. किसिए स्हेतड़ी कुण गोरी आई?
राम चन्द्रा स्हेतड़ी सीता गोरी आई।

बामन-बलि, शिव आदि:–भगवान विष्णु का बामन रूप धारण कर दैत्यराज बलि का सर्वस्व दान में लेना और उसे बन्दी बना कर पाताल में भेजना प्रसिद्ध है। लोककवि ने इस प्रसंग द्वारा उपनयन गीतों में बालक के पिता की यज्ञ तथा दानभावना को अभिव्यक्ति दी है। यथा–

बलि राजे कोई जगन रचाया
सौ सठ ब्राह्मण आयो राम॥

इसी प्रकार शिव, रावण, कृष्ण, शिशुपाल आदि सम्बन्धी लोक-प्रिय प्रसिद्धियों को लेकर लोक-कवियों ने उन्हें अपनी स्वच्छन्द रचनाओं में प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। शिव-पार्वती, गोरजां तथा नारद, ब्रह्मा-सावित्री, मारकण्डा आदि पौराणिक देवी-देवताओं के वर्णन भी इन गीतों में उपलब्ध होते हैं। शिव विवाह का अद्भुत दृश्य उनकी बैल सवारी, साथ में देव दैत्यों का संगीत एवं नृत्य प्रस्तुत करते चलना, विचित्र मुद्राओं में अभिनय, उल्टी सीधी वेष-भूषा व्यंग्य एवं अदभुतता के लिए प्रसिद्ध है। विवाह के लग्न-गीतों में बरातियों के लिए ऐसे प्रतीक-प्रयोग बड़े सामयिक लगते हैं। यथा—

बैल चढ़ी शम्भू जी आए कन्ने आई पार्वती।
बीण बजांदे नारद आए, कन्ने आए भैरों जत्ती।
इसी प्रकार मारकण्डा का प्रयोग—

जुग जीये नि मेरा मारकण्डा, दुध पिये नी मेरा मारकण्डा।

गंगा—

गंगा को वेद-शास्त्रों में पुनीत माना गया है। लोकाचार गंगा के प्रति बड़ी पवित्र भावनायें रखता है। अनिष्ट, पापकर्म तथा हत्या आदि की शुद्धि गंगा स्नान से ही सम्भव है। अतः कुछ प्रयोग देखिये–

क. तने दी मैल राजा गंगा न्होई जांदी, जी जमना न्होई जांदी।
कपला दी हत्या बड़ी भारी, समझी, चलो राजा भरथरी।
ख. गंगा ता जमना दोयो बैहदड़ियां मना मरइया।
चल मैण पैईयां दे चलिये, बावल सोयलड़ा।

ग. सुख समृद्धि के लिए अलंकारिक प्रतीक:

अलंकारों में प्रतीकात्मक की अभिव्यंजना महती संभावनायें बनी रहती हैं। ऐसे प्रयोग अलंकार की आलोक परिधि में और भी अधिक सुस्पष्ट हो उठते हैं। वस्तुतः अलंकारमूलक प्रतीक अपेक्षाकृत अधिक सम्प्रेष्य एवं संवेद्य होते हैं। लोककवियों की रचनाएं अलंकारिक काव्य रुचिजन्य नहीं होती,

Scanned with CamScanner

अतः इन में अलंकारमूलक प्रतीकों के आडम्बरपूर्ण रूप की सम्भावना कम रहती है । इन में अलंकार प्रयोग सहज होता है अतः सहजता में ही अलंकारिक प्रतीक प्रयोग हुए मिलते हैं । विवेच्य गीतों में थोड़े बहुत अनुपात से निम्नलिखित प्रतीक सहज उपलब्ध हैं—

क. श्लेषगत प्रतीक ख–यमकगत प्रतीक ग. रूपकगत प्रतीक घ अन्योक्तिपरक प्रतीक
ङ. मानवीकरणपरक प्रतीक । **कुछेक उद्धरण प्रस्तुत हैं —**

श्लेषगत प्रतीक:

श्लेष एक ही शब्दविशेष पर आश्रित रहता है और अनेक अर्थध्वनियां करता है । उस में प्रतीकात्मक व्यंजना हेतु दो संदर्भों के सादृश्य-संयोजन की अनिवार्यता है । श्लेषगत प्रतीकप्रयोग देखिये:-

रावी: अनेक कवियों ने रावी शब्द द्वारा विशिष्ट अर्थ की व्यंजना की है । यह शब्द केवल नदी के लिए ही नहीं अपितु दूरी तथा परदेस के अर्थ में भी प्रयुक्त मिलता है । यथा :

1. रावियां दें कण्ढे-कण्ढे हण्डदेया गब्बरा । (नदी) ।

2. जांदे मुसाफर जाई रैंहे रौइया पार । (दूरी) ।

गोरी:–गोरी शब्द भी नायिका, पत्नी प्रेमिका तथा गोरी (सुन्दर), गोरी (लड़की) आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है । यथा–

1. नां करगोरिये मैलियां अखियां असां परदेसियां दूरी जाणा ।
2. गोरी तेरा कन्त चलेया परदेस ।
3. दखण देसां ते आया जो गोरिये,
पच्छम देसां जो जाणा ऐ।

पिंजरा:

शारीरिक कृशता के लिए यह शब्द इस प्रकार प्रयुक्त हुआ है –

1. झूरी तां झूरी माए पिंजरा होया, हड्डियां दी होई लम्मी डोर ।
2. झूरे पिंजरा लमारिया, कन्ने गंगिये बदाम रंगिये ।

असमर्थता के संदर्भ में जन्दरा (Lock) शब्द का प्रयोग देखिये –

हस्सी नी कीतियां गल्लां ससु जी, मने दे नी चुकदे चा,
पैरियां जंदरे लाई जांदे ससु जी, चाबियां लई जांदे नाल ।

इसी प्रकार खिन्नू (गेन्द), कलम, गोरा रंग आदि शब्द भी श्लेषरूप में प्रतीक बन कर प्रयुक्त हुए हैं ।

यमकगत प्रतीक:–यमक में एक शब्द अनेक बार आवृत्ति पाकर अनेकों अर्थ की व्यंजना करता है । ऐसे प्रयोग भी इन गीतों में सहजभाव से हुए हैं । कुछ रूप लीजिए :–

1. पहाड़े देसे खटिया नी जांदा, पहाड़ नी जांदा कोई ।
2. खाणे कुखाणे माए खाणे जो दिण्दो,
कुजो सुणा माए रो-रो ।
3. बोल नी मेरिये **रण बण** कोयले ।
रण वण छोडी कुत्थू चलिए ।
सौवण सौवण बरसी रिहा जी ढोला, **सौवण** गिया परदेस ।

उपर्युक्त उद्धरणों में पहाड़, खाणा, रण बण, सौवण आदि शब्द अपने मूल अर्थ के स्थान पर अन्य अर्थों का संकेत करते हैं ।

रूपकगत प्रतीक –

रूपक में अन्य अलंकारों की अपेक्षा प्रतीकात्मकता की संभावनाएं अधिक रहती हैं । रूपकगत प्रयोग शिल्प-सिद्धि सापेक्ष है । विवेच्य गीतों में रूपक-योजना का सहजतया व्यापक प्रयोग मिलता है । इन में रूपकों की प्रतीक रूप में अन्विति सहजता से हो गई है । एक उदाहरण इस प्रकार है –

जंघां ता होईयां माए सैह्ल पराल, पिठी तां होया लसकारा ए ।

प्रस्तुत उदाहरण में रूपक तथा प्रतीक दोनों का उदाहरण उपलब्ध है । इस में उपमेय उपमान में पूरी तरह अनुभूत हुए हैं, जो प्रसव-पीड़ाओं के प्रतीक हैं । एक और उदाहरण देखिये :–

वस्सै बीयां धारां, पौहन फुहारा,
ओ द्रुहे दिया बासिया, हुण घरें आई जा ।
बदलें घिरी घिरी हार बणाया, रली मिली सखियां झूले पाए, आदि ।

इस गीत में वर्षा की फुहारों, बादलों का घिर घिर कर हार बनाना, सखियों का झूला झूलना आदि अर्थ, एवं भावध्वनियों द्वारा प्रतीक के अर्थवैशिष्ट्य के समवाहक हैं ।

अन्योक्तिपरक प्रतीक:–विवेच्य गीतों में इस प्रकार के उदाहरण अधिक नहीं हैं क्योंकि लोककवि तो निश्छल प्रेमगीत गाता अपनी भावनाओं को वाणी देता आया है । यथा :

उड़ीया नी कागा बड़ीया स्यागा उड़ी करी करया स्नेहड़ा,
जाई बोलयां मेरिया अम्मां नखेदणियां,
धीया जो सुपणा होया,
सुपणे च सस सुहागण, हरी-हरी दाखां लई आई ।। तथा—

हम तुम सिमरो मनसा माया, मथुरा छोड़ी श्याम गोकुल आया,
गोकुल बजियां बधाईयां राम ।

नंद भी गोरे जसोदा भी गोरी, श्यामलड़ा कुती जाया राम ।
श्रौर–

किसिये घर जम्या पौतर किसिये घर जम्मया घ्यौत्तर,
किसिये घर होया कुलदीवड़ा ।

इन उद्धरणों में क्रमशः हरी हरी दाख का भेंट करना-गर्भवती होने का, श्यामलड़ा कृष्ण का तथा कुलदीवड़ा पुत्र का प्रतीक है। ऐसे ही कुछ अन्य उदाहरण सहज उपलब्ध हैं।

मानवीकरण प्रतीक-मानवीकरण-प्रयोग में कोई विशुद्ध अनुभूति किसी मानवीय व्यापार एवं रूप में ढल कर एक पूर्ण व्यक्तित्व बन जाती है। इन गीतों में ऐसे अनेक उद्धरण उपलब्ध हैं। यथा—

1. झुल वो बरोटुआ, तेरे झुलणे दा चा,
   सजणा दा लाया, पाणिये बिना कुम्हलाया ।
2. पारलिये धारे रुखबुगिये, थोड़ी भैणे निमदी होयां,
   तुद पिच्छे मेरा पिया प्योका, म्हांझो मुईये दिखणे दा चा ।
3. तूता वे तूता तेरी छाऊं घणी,
   मैं वो परदेसण छावां खड़ी, श्रादि ।

उपर्युक्त उद्धरणों में वटवृक्ष (बरोटू), पहाड़ी (धार), बदली (बादल का टुकड़ा), रावी (नदी), शहतूत (तूत) श्रादि का पूर्ण व्यक्तित्व दिया गया है। समष्टि रूप में इन गीतों में प्राकृतिक उपकरणों द्वारा सन्देश-सम्प्रेषण श्रथवा दौत्य-कर्म की परिकल्पना का सुन्दर रूप मिलता है जो प्रासंगिक है। कामपरक प्रतीकों का बहुत ही कम प्रयोग हुश्रा है जो क्षेत्रीय लोकजीवन के मर्यादित एवं संस्कृत प्रभाव का कारण प्रतीत होता है।

मूल्यांकन :– उपर्युक्त **विश्लेषण के श्राधार** पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विवेच्य गीतों में दार्शनिक तथा कलात्मक रूपों का श्रभाव है। इस का मुख्य कारण यह है कि लोकगीतकार श्रभिजात्य कवियों की भांति साम्प्रदायिक दर्शन से प्रतिबद्ध नहीं होता। प्रणय के श्रतिरिक्त किसी श्रन्य जीवन-दर्शन में उसकी श्रास्था नहीं होती। इन का बौद्धिकपक्ष साधारण लोकचिन्तन स्तर का होता है। श्रतः इस में प्रतीक-प्रयोग की विशद सम्भावनाश्रों का श्रभाव सा रहता है। इनमें किसी प्रकार की दार्शनिक, साधनात्मक तथा रहस्यात्मक प्रवृत्तियों का समृद्ध रूप नहीं मिलता। इनमें केवल प्रेममूलक प्रतीकों की संयोजना मिलती है। विवेच्य गीतों में वनस्पति तथा जीवनधारी प्रतीक-प्रयोग के श्राधिक्य का भी यही कारण है।

इन गीतों में प्रतीकों की श्रपेक्षा प्रसिद्धियों का श्रधिक श्राग्रह है जिस की स्वतन्त्र व्यंजना प्रतीक नहीं बन पाती है। उसके लिए उसकी प्रसिद्धि द्वारा किसी श्रन्य विशद श्राशय की व्यंजना श्रावश्यक है। कहीं कहीं केवल किसी प्रसिद्धि तथा कवि परिपाटी का वर्णनमात्र ही मिलता है, जो उसे प्रतीक श्रवस्था का सूचक बनाने में श्रसफल रहा है। प्रसिद्धियों के रूढ़ श्रर्थ के साथ किसी भाव तथा विचार के संवेदनात्मक रूप कम मिलते हैं। श्रतः इन प्रयोगों में प्रतीक बनने की महती संभावनायें हैं जो श्रधिकाधिक प्रयोग की श्रपेक्षा रखती हैं। इन गीतों में ऐसे प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक है जो उपमान से प्रतीक बने हैं इन के श्रनुशीलन से यह सहज प्रतीत होता है कि जो तत्व प्रारम्भ में वस्तु या गुण के उपमान बन कर व्यवहृत हुए थे वही कालान्तर में निरन्तर प्रयोग में श्राने के कारण रूढ़ हो कर प्रतीक का रूप धारण कर गए हैं।

—**राजमन्दिर नेरटी, कांगड़ा ।**

कर्मवीर हकू रावत

—**मदन मोहन 'कमल'**

वर्तमान हिमाचल प्रदेश का ज़िला सिरमौर, जो कि पहले रियासत थी, जहां एक श्रोर प्रशासनिक दृष्टि से सभी पहाड़ी रियासतों में श्रग्रणी रहा है, वहीं दूसरी श्रोर इसमें श्रनेक ऐसे सपूत हुए जिन्होंने साम्राज्यवादी जुल्मो-सितम के विरुद्ध प्रत्येक युग में श्रावाज उठाई है। इसी भूमि में हमें कभी सहस्रबाहु के विनाशक भगवान परशुराम के दर्शन हुए, कभी इस धरती को दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह ने पवित्र किया, कभी यहां महर्षि वेद व्यास, महर्षि शृंग, महर्षि मार्कण्डेय के दर्शन हुए, कभी नन्तीराम हवलदार ने गुलाम कादिर रोहेला का द्वन्द्व युद्ध में सिर काट कर मातृभूमि को श्राक्रमणकारियों से बचाया तथा कभी पझोता श्रान्दोलन के नायक मियां चूंचू ने कुर्बानी दी।

ऐसा ही एक वीर तहसील रेणुका के ग्राम घंडूरी का निवासी हकू रावत था; जिसके व्यक्तित्व की चर्चा श्रास-पास के इलाके में थी। वह लोगों की समस्याश्रों व विपत्तियों के निवारण में उचित सुझाव देता था। श्राज से 400 वर्ष पूर्व हुए इस व्यक्ति ने इलाके के लोगों की तन-मन-धन से सेवा की श्रौर श्रन्त में उन्हीं की इच्छानुसार शहीद हुश्रा।

उस समय रियासत में महाराजा मही प्रकाश राज्य करते थे। भारत में तब मुगल शासन था जो कि निरंकुशता व मनमानी के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है। श्रतः सिरमौर राज्य वंश के निर्दोष होते हुए भी, निरंकुशता का प्रभाव रियासत के प्रशासन पर पड़े बिना न रहा। चापलूस मंत्रियों व श्रधिकारियों की मन्त्रणा से मनमाने कर व हरजाने लगाए जाते, जिनमें सरकारी कोष की श्रपेक्षा व्यक्तिगत लाभ श्रधिक होता था। लोग बेरोजगार, श्रशिक्षित थे श्रौर श्राय के साधनों से रहित थे, दो रोटी भी मुश्किल से जुटाते थे, कर श्रादि देने की सामर्थ्य कहां! कर न दे पाने वालों को मन भर का भारी पत्थर रख कर खड़ा किया जाता, एक दिन रात खड़े रहकर भी कर न दे पाने वालों को सख्त कारावास भुगताना पड़ता था। इन श्रत्याचारों से लोग तंग श्रा गए।

महाराजा महीप्रकाश का पुत्र मेदिनी प्रकाश श्रभी छोटा ही था कि उनकी मृत्यु हो गई। प्रशासन की बाग-डोर महीप्रकाश के मन्त्री दुल्लू मेहता के हाथों में श्रा गई। श्रफसरशाही फैली, महाराजा मही प्रकाश द्वारा लगाए गए कर श्रौर बढ़े। हरीपुर, कुदोर्न, कुपड़, लानी चेता, कोट चनालग में श्रन्न के रूप में कर संग्रह हेतु भण्डार खुले हुए थे। श्रन्न श्रधिक मात्रा में लिया जाता था।

ग्रामवासियों ने इस बारे हकू रावत से सुझाव मांगा। हकू रावत से प्रशासक दुल्लू मेहता के विरुद्ध श्रान्दोलन छेड़ने की बातें सुनकर वे धीरे-धीरे संगठित होने लगे। यह खबर प्रशासक मेहता को मिली। वह भड़क उठा "मेरे राज्य में मेरे ही विरुद्ध विद्रोह"? उसने 500 सैनिकों को श्राज्ञा दी –"घंडूरी की गढ़ी को घेरकर हकू, उसके परिजनों व श्रन्य विद्रोहियों को मार दो, उनकी सम्पति जब्त की जाय।" नाहन से गई सेना की सूचना

हकू को उसके पहुंचने से पूर्व मिल गई। उसने परिवार को गढ़ी से निकालकर छुपा दिया और स्वयं देवामानल में भगवान शंकर के मंदिर में पहुंचा । लोगों की आस्था के फलस्वरूप देवगण शक्ति दिखाते थे। हकू ने भगवान शिव से प्रार्थना की – "प्रभु, आततायी से लोहा लेने की मुझे शक्ति दो।" उसे लगा शिव उसे वर दे रहे हैं-- "विजय तुम्हारी होगी।" उत्साहित हकू ने मंदिर में ही सभा बुलाई। मुख्य उपस्थितगण ये थे :–

क्रम संख्या ग्राम	व्यक्ति
1. कोटी घोमान	मुगलिया घोमान
2. गनोग	सुदामा
3. रजाण	घारता पजवाण
4. संगड़ाह	संगड़ही
5. लुधियाना	कालपू
6. अन्धेरी	कोड़ो
7. सैंज	बाजो
8. अरट	आइसू
9. शिलावड़ा	बादल
10. भवाई	भादर
11. कोटी कांडा	मिढ़का
12. चौरास	समा चौरासी
13. देवना	शोऊ
14. नौहरा	शोऊ
15. छोग	लछू छोगी
16. बनोग	मानू
17. घामला	माठा
18. चेवड़ी	घर्मा
19. चौकार	सिगटा
20. पुन्नर	दिलमा
20. भुटली मानल	जब्बो
22. भराड़ी	लड़िया
23. मानल	बिरख देवा

इत्यादि।

उपस्थित व्यक्तियों से हकू ने कहा, "प्रशासक दुल्लू मेहता के अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध हमें संगठित होकर संघर्ष करना चाहिए व सरकारी सेना को हराना है।" सब ने एतदर्थ भगवान शंकर के समक्ष कसम खाई। सब संगठित होकर रात्रि 10—11 बजे थंडूरी गढ़ी की ओर चले, क्योंकि वे निशस्त्र थे। सेना गढ़ी के अन्दर सोई हुई थी। हकू ने सामने दीवार पर चढ़कर देखा। चांदनी रात थी। इतनी सेना देख कर वह दंग रह गया। फिर सहसा, दैव योग कहिये या भगवान शंकर की प्रेरणा, वह साथियों सहित दीवार फोड़ कर गढ़ी के भीतर पहुंच गया और अपने साथियों की संख्या के लिये पर्याप्त ढालें, तलवारें, सैनिकों के कब्जे से छीन लीं। इसके पश्चात् हकू ने दो चार सैनिकों को मार दिया जिससे सेना में शोर मच गया। हड़बड़ाए सैनिकों का हकू व उसके साथियों से युद्ध हुआ। शस्त्र विद्या से अनभिज्ञ होते हुए भी आन्दोलनकर्ताओं में एक भावना थी, उत्साह था, मर

मिटने का संकल्प था। मुट्ठी भर विद्रोहियों का विशाल राजसेना से युद्ध ज़ोरों पर था। फलतः दो सौ सैनिक तथा आधे से अधिक विद्रोही मारे गए। सेना के आक्रमण की बात, क्योंकि सारे क्षेत्र में फैल चुकी थी और आन्दोलन की बात भी इलाके के लोगों को ज्ञात थी, अतः लोगों में भय के स्थान पर रोष था। फलतः युद्धस्थल पर असंख्य लोगों का प्राणों की बाज़ी लगाने हेतु तांता लग गया। भीरु लोग घरों में बन्द हो गए थे और साहसी बड़ी तेज़ी से मैदान में उतर रहे थे। जितने विद्रोही मरते उससे दुगने आ पहुंचते। तलवारों, भालों, तीरों की मानो झड़ी लगी थी। अन्त में राजसेना के केवल 100 सैनिक तथा 50 विद्रोही शेष रहे, 400 सैनिक व 300 विद्रोही मारे गए। विद्रोहियों के पास जो शस्त्र थे वे सब टूट गए। परिणामतः हकू व उसके शेष साथियों को बन्दी बनाकर नाहन जेल में पहुंचा दिया गया। वहां पर कर न दे सकने पर कारावास भोगने वाले बन्दियों से हकू ने बातचीत की और जैसा बर्ताव उनसे सुना वैसा ही अपने लिये पाया—नंगे शरीर पर गर्म तेल का छिड़काव, मोटे अनाज की अधिक नमक वाली रोटी, गोल पत्थर पर खड़ा किया जाना, हिलने-डुलने पर पिटाई, इत्यादि।

यह सब देखकर हकू ने कर न दे पाने वाले कैदियों को भागने के लिये धीरे धीरे तैयार कर लिया और एक रात को लगभग 60–70 कैदियों सहित हकू रावत हथकड़ियों, बेड़ियों सहित जेल की दीवार फांदने लगा। देखने वाले प्रहरियों में से कुछ की हत्या कर व कुछ को घायल करके वे लोग भाग निकले। इसकी सूचना प्रशासक को मिली। उसने "खेड़ी" स्थान के कुछ रांगड़ों को दरबार में बुलाया और शेष सैनिकों को विद्रोहियों की गिरफ्तारी के लिये भेजा। पुनः युद्ध हुआ और कुछ सैनिक व हकू के कई साथी मारे गए। हकू आदि को गिरफ्तार कर दरबार में पेश किया गया। मेहता द्वारा मृत्युदण्ड सुनाए जाने पर हकू ने कहा – "यदि मनमाने कर न दे पाना अपराध है, यदि अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना अपराध है, तो मैं इस अपराध को स्वीकारता हूं किन्तु एक खून चूसने वाले खटमल को निहत्थे लोगों पर आक्रमण कराने वाले हत्यारे को दण्ड देने का कोई अधिकार नहीं। मैंने यदि मरना ही है तो तुम लोगों से युद्ध करके वीरतापूर्वक मरूंगा। साथ ही यह भी कहना चाहता हूं कि क्योंकि मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति की, अन्तिम इच्छा अवश्य पूरी की जाती है, अतः मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि मुझे व मेरे साथियों को शस्त्र दिये जाएं।" प्रशासक ने कहा – "यह राज सभा है, खेल का मैदान नहीं। यहां हुड़दंग मचाने की अनुमति नहीं मिल सकती। फिर भी यदि तुम युद्ध चाहते हो तो केवल तीन व्यक्तियों को शस्त्र दिये जा सकते हैं। शेष बन्दियों को फांसी पर लटका दिया जायगा।" इस शर्त को हकू ने भी स्वीकार कर लिया केवल एक व्यक्ति "माना" जो कि हकू का भानजा था, की रिहाई के लिये उसने प्रशासक से कहा—"भानजे को मैं अपने सामने मरते देखना नहीं चाहता, दूसरे मेरा बच्चा छोटा है, मेरे कुटुम्ब की देखभाल केवल यह माना कर सकता है।" किशोर महाराज पुत्र मेदिनीप्रकाश दरबार में ही थे। तानाशाह होते हुए भी दुल्लू मेहता भावी महाराजा की बात को नहीं टाल सकता था। अतः हकू की बात का समर्थन जब राजकुमार मेदिनी प्रकाश ने भी कर दिया तो लाचार दुल्लू मेहता को 'माना' की रिहाई का आदेश देना पड़ा। जाते हुए 'माना' को हकू गले मिला और कहा, "बेटे ! मेरे बेटे ! बाजो को प्यार करना, इलाके के सभी साथियों को मेरी ओर से राम राम कहना और देखो बेटे, अब बाजो के सिर पर सिर्फ तुम्हीं हो, उसकी देखभाल रखना तुम्हारा छोटा भाई है वह !" माना आंखों में आंसू लेकर चला।

इसके बाद हकू व सिगटा को शस्त्र दे दिये गए। रांगडों ने प्रशासक दुल्लू की आज्ञा से एक दम उन पर हमला कर दिया। किन्तु वाह रे सिरमौरी वीर! भाड़े पर बुलाए गए उन अठारह निर्दय हृष्ट पुष्ट रांगड़ों का तुमने तीन ही घन्टों में सफाया कर दिया! फिर हिदा, जुलफिया व जागड़ा का भी वही हाल हुआ। अन्त में दुल्लू का पुत्र सरगू बढ़ा और हकू व सिगटा से उसका घोर युद्ध हुआ। इसी बीच हकू की तलवार सरगू की ढाल से टकरा कर टूट गई और उसका साथी सिगटा भी मारा गया। यह देख कर कुछ अन्य राज-सेवक भी हकू पर प्रहार करने

लगे, परन्तु हकू टूटी हुई तलवार से ही सबके प्रहार झेलता व युद्ध करता रहा। तभी "पठानिया" नामक व्यक्ति ने सभाभवन की अटारी से हकू को आवाज दी। हकू के ऊपर देखते ही पठानिया ने निशाना बांध कर ईंट फैंकी जो कि हकू की आंख पर लगी। आंख फूट गई और खून की धारा बह चली। हकू के इस प्रकार लाचार हो जाने पर "रमसा" देशी ने हकू का सिर खड्ग-प्रहार द्वारा धड़ से अलग कर दिया। आजादी के दीवान ने आजादी की बलि वेदी पर स्वयं को अर्पित कर दिया।

अब भी लोग हकू रावत की कुर्बानी से सम्बद्ध लोकगीत दीवाली के अवसर पर गांव गांव में गाते हैं। स्वतन्त्रता के इस दीवाने को हमारा शत्-शत् प्रणाम !

—कमल निकुंज, निकट जैन मन्दिर,
नाहन, हिमाचल प्रदेश।

शब्दश्री

	हिन्दी	कुल्लुई	महासुई
(1)	हे घट-घट के जानने वाले, हे दुखियों के दुख को दूर करने वाले परमेश्वर! इस समय तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं है, मेरी रक्षा करो।	हे घटा घटा बै जाणनू आले, हे सभी दुखी रे दुख दूर करने वाले परमेशरा! एतरी सम्मे तोत सवाये मेरा होर कोई नी आथी, मेरी फाजत केर।	हे घटो घटो रे जाणने वाले, हे सवी दुखी रे दुख दूर करने वाले परमेशरा एस समय तांदो सिवा मेरा होर कोई नई असो। मेरी फाजत करो।
(2)	हे दया के भंडार, हे रोम रोम में व्यापक प्रभो! मेरी रक्षा करने वाला तू ही है। हे दयालू, मैं तेरी शरण में हूं।	हे दया रे भंडार! हे रोमरोमा न रोहणू आले परमेशरा! मेरी फाजत केरनू आला तू ऐसा। हे दयालू हाऊं तेरी शरणा न सा।	हे दया रे भंडार, हे रोमा–2 दे रोहणो वाले परमेशर, मेरी फाजत करनी आला तू ही असो, हे दयालू आंऊं तेरी शरणों दा असो।
(3)	तब उस देवी ने एक पर्वत पर पांच वानरों को बैठे देखा।	तबैं तेसे देविए एकी ढोगा पन्धे पोंज बान्दर बैठदे हेरे।	तबै तेसे देवीए एकी पहाड़ो पांदे पांच बान्दर बैठे देखे।
(4)	जानकी ने अपने पीले दुपट्टे में अपने आभूषणों को बान्धा और नीचे फेंक दिया।	जानकीए आपणे पीऊंले धुंडू न आपणे गहणे बौहने होर बुनहे शेटी दीने।	जानकीए आपणे पीऊले चादटू दें आपणे गौणे बाने और हुन्दे शेटी दिते।
(5)	लक्ष्मण ने कहा हे नरोत्तम राम! रोने और बिलाप करने से कुछ लाभ नहीं होगा, मेरे साथ चल कर इस बड़े पर्वत पर सीता की खोज करें। वह भी हमें ढूंढ रही होगी।	लक्ष्मणे बोलू, हे नरोत्तम राम! रोई कलाइया किछ फाईदा नी होणा में संघे चोलीया एई बड्डे ढांगा पन्धे सीता बै तोपम। सो भी आसा ब तोपदी होली लागदी।	लक्ष्मणे बोलू हे नरोत्तम राम! रोई धोई रो कुछ फायदा नई होणा, मां साथी चाली रो एस बड़े पहाड़ों पांदे सीता री ठोल करमें। से भी हामों ठोलदी लागी रई होली।
(6)	राम लक्ष्मण से बोले, हे भाई! मेरा जैसा पापी संसार में दूसरा कोई	रामें लक्ष्मणा बै बोलू हे भाई मूं साही पापी दुनियां न दुज्जा कोई	रामे लक्ष्मणों के बोला हे भाई! मां जेहा पापी संसारा बिच दुज्जा कोई

नहीं है। समुद्र के द्वीपों के समान एक के पीछे दूसरा दुःख लगातार मेरे सामने आ रहा है और इसका अन्त होने में नहीं आता।	कोई नीं आथी। समुद्र रे टाप्पू साही एकी पिच्छे दुज्जा दुःख लगातार मेरे साहमणे एन्दा लागा आगा दा सा होर उईरा अन्त होणेन नीं एन्दा।	दूजा कोई नई असो। समुद्रो रे दीपो साई एकी दा बाद दूजा दुख मां पीछे आऊंदा लागी रोवा और ए खतम होणी पांदे नी आन्दा।
(7) राज्य हाथ से निकल गया। घर बार, परिवार कुटुम्ब सम्बन्धी सब छूट गए। पिता स्वर्ग को चले गए। बन-बन की खाक छानी। इतने दुःखों के होते हुए भी केवल प्राण प्यारी सीता का एक सहारा था जिसका मुख देखकर मैं जीता था किन्तु कुटिल दैव को यह भी एक आंख न सुहाया।	राज हौथा न निकली गोउ। घोरबार, टब्बर, नाती पोती सब छुट्टी गोए, बापू स्वर्गा बै चली गोए। बोणे बोणे री धूड़ छाणी। एतरे दुःखे रे होंदे हुए भी सिरफ प्राण प्यारी सीता रा एक आशरा थी जुणी रा मुहं हेरीया हाऊं जीया थी पर निर्दयी दैवा बै ए जरा भी शोभला नीं लागा।	राज हाथो दा निकली गोआ। घर बार, टाब्बर, रिश्तेदार सब छुटी गोए। बापू स्वर्गों कै डेई गोए, बणों-बणों धूड़ छाणी। इतरे सारे दुख होन्दे बी एक प्राणों दा प्यारी सीता रा आसरा था, जसरा मुहं देखी रो जीऊ था पर दुष्ट दैबा खे ये एकी आखी भी आछा न लागा।

—विद्या-मीना

सिरमौरी ताल: एक ऐतिहासिक स्थल

—पी० के० शरण

पौंटा साहिब से कोई 16 किलोमीटर उत्तर पश्चिम में स्थित सिरमौरी ताल नामक स्थान गिरी नदी के बायें तरफ स्थित है। गिरी नदी यमुना नदी की एक सहायक नदी है। सिरमौरी ताल का शाब्दिक अर्थ 'सिरमौर का ताल' अर्थात सिरमौर का तालाब होता है। ऐसा समझा जाता है कि किसी समय में यह स्थान सिरमौर के राजाओं की राजधानी थी या उन लोगों का यहां कोई बड़ा दुर्ग था। किम्वदन्ती है कि उनकी राजधानी किसी नटनी के श्राप से नष्ट हो गई थी। श्राप के शब्द सिरमौर की बोल चाल की भाषा में इस प्रकार जीवित हैं—"आर टोका पार पोका, डूब मरो सिरमौर के लोका"। कहते हैं कि एक बार एक नटनी (नट जाती की एक स्त्री) राजा के दरबार में आई। वह स्त्री नट नृत्य में बहुत कुशल थी। राजा ने उससे यह शर्त रखी कि अगर वह नाचते हुए पोका गांव से सिरमौर गांव तक चली जाए तो उसे वह अपने राज्य का आधा हिस्सा दे देंगे। नटनी ने उनकी शर्त को स्वीकार किया और एक निश्चित दिन उस ने अपना नृत्य पोका गांव, जो गिरी नदी के दूसरी तरफ स्थित है, से रस्से के ऊपर शुरू किया। रस्से के ऊपर नाचती हुई जब वह सिरमौर गांव के पास पहुंचने ही वाली थी तब राजा के मन्त्रियों ने महसूस किया कि राजा ने जो शर्त रखी है उसके अनुसार राज्य का आधा हिस्सा उस नटनी को देना पड़ेगा। मन्त्रियों ने झट से बिना सोचे विचारे उस रस्से को काट दिया। फलस्वरूप नटनी रस्से से गिर गई और उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पहले उसने यह श्राप दिया—'आर टोका, पार पोका डूब मरो सिरमौर के लोका', टोका गांव सिरमौर गांव की दाहिनी ओर स्थित है। जैसा कि पहले कहा गया है पोका गिरी नदी के दूसरी तरफ एक गांव है। नटनी को इन दो गांवों के बीच झूलते रस्से पर नृत्य करना था। इन शब्दों का अर्थ है कि 'सामने (बाएं) पोका है और दूसरी ओर टोका गांव है, डूब मरो, क्योंकि तुमने विश्वासघात किया है'।

उस नटनी की मृत्यु, क्योंकि गिर जाने की वजह से हुई, अतः सम्भव है कि उस नदी का नाम भी इसीलिए गिरी नदी पड़ गया। परन्तु ठोस प्रमाण के अभाव में इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

आज भी इस नदी के दूसरे हिस्से पर बालू पत्थर से निर्मित स्तम्भ में गोलाकार छिद्र हैं जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि इस स्तम्भ के सहारे नटनी के नाचने के लिए रस्से बांधे गए थे। ठीक इसी प्रकार का दूसरा स्तम्भ भी नदी के दूसरे हिस्से से प्राप्त हुआ है।

इस नदी के नामकरण के बारे में जो भी मत हो, हमें, यह देखना है, कि सिरमौरी ताल की ऐतिहासिकता क्या है? जैसा कि ऊपर कहा गया है कि सिरमौरी ताल गिरी नदी की बांयीं ओर स्थित है। वहां पर एक विशाल और बड़ा ही विस्तृत टोला है इस टीले के दो तरफ 'खाई' है। टीले का उत्तरी हिस्सा ढलानदार है और गिरी नदी में खुलता है। ऐसा लगता है कि टीले में प्रवेश के लिए गिरी नदी की तरफ से दरवाज़ा रहा हो। पुराने जमाने में जो किले या दुर्ग बनते थे उनकी बनावट ठीक इसी प्रकार की होती थी। किले के चारों तरफ 'खाई' होती थी और एक तरफ से 'खाई' के ऊपर फाटक रखा जाता था जो समयानुसार उठा लिया जाता था और इस प्रकार किले में प्रवेश के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं रहता था। ऐसा किले की सुरक्षा की

दृष्टि से किया जाता था। लगता है कि सिरमौर का किला भी कुछ इसी प्रकार से बना हुआ था। इस टीले को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहां पर मिट्टी का कोई दुर्ग रहा होगा परन्तु दुर्भाग्यवश इस टीले से वर्तमान समय में आबादी के कोई भी चिन्ह देखने को नहीं मिले हैं। इस टीले से या इसके आसपास जो भी सामग्री मिलती है, वह इस प्रकार है—

नष्ट एवं धराशायी शिव मन्दिर

शिव मन्दिर पत्थर का बना हुआ है। मन्दिर का आधे से अधिक हिस्सा इसके मलवे से ढक गया है। मन्दिर का शिखर नष्ट हो चुका है पर मन्दिर के अवशेष को देखने से यह पता चलता है कि यह तीन तलों वाला मन्दिर था। अर्थात् मन्दिर निर्माण–शैली के अनुसार यह मन्दिर प्रारम्भिक मन्दिर निर्माण-शैली वाला था। मन्दिर की दीवार में बीच वाले तल पर लकोला (खिड़कीनुमा खाली स्थान) बना हुआ है।

यह बीच वाला तल अपने अन्य दो तलों से काफी बड़ा एवं विस्तृत है। इस खिड़कीनुमा खाली स्थानों (परछती) में शैवमत के देवी देवताओं की मूर्तियां स्थित थीं। अब यह मन्दिर नष्टप्रायः हो गया है, इसलिए इन लकोलों के ऊपर कोई भी मूर्ति नहीं है। मन्दिर के गर्भगृह में सम्भवतः शिवलिंग स्थापित रहा हो पर अब कुछ भी नहीं बचा हुआ है। शिव का वाहन 'नन्दी' मन्दिर के समीपवर्ती मैदान में आज भी खड़ा हुआ है। मन्दिर का बाह्य-भाग साधारण एवं सादा है और पत्थरों को चौकोराकार के रूप में काट काट कर बनाया गया है।

मन्दिर के गर्भगृह में पूर्व दिशा से प्रवेश था। मन्दिर का प्रवेशद्वार में मेहरावनुमा है जिस पर कोई चित्रण नहीं है। मन्दिर का गर्भगृह चौकोर है तथा इसका छत भीतर की ओर मुड़ा हुआ है और क्रमशः ऊपर की ओर संकीर्ण होता गया है, जिसे हम अंग्रेजी में 'रिसीडिंग रूफ्स' कहते हैं। प्राचीन वैशाली का मौर्य कालीन स्तूप इस शैली पर बना हुआ है। मन्दिरों की निर्माण शैली को ध्यान में रखते हुए इस मन्दिर का निर्माण ही आठवीं शताब्दी के आस पास प्रतीत होता है।

नन्दी की मूर्ति :

नन्दी की मूर्ति बालू पत्थर की बनी हुई है और इसका मुंह टूटा हुआ है। मूर्ति के पत्थर का रंग हल्का भूरा है। इसका आकार 75–60–30 सैन्टीमीटर है।

नन्दी के ऊपर शिव को बैठने के लिए आसन लगे हुए हैं। नन्दी की मूर्ति में सजीवता है। नदी की शारीरिक बनावट बड़ी ही सूक्ष्म है। गर्दन के पास त्वचाओं का मुड़ा होना तथा शरीर की मोटी मोटी धमनियों, हृष्ट पुष्ट शारीरिक अंगों को बना कर शिल्पी ने अपने पूर्ण विकसित कौशल का परिचय दिया है। कला की दृष्टि से नन्दी की मूर्ति का निर्माण 8वीं से 10 वीं शताब्दी के करीब प्रतीत होता है।

पत्थर का कूआं:—शिव मन्दिर से थोड़ी दूर पूर्व दिशा की ओर एक 2.22 मीटर अर्द्धव्यास का कूआं है जो नन्द भौजाई के नाम से विख्यात है। एक रुचिपूर्ण किम्वदन्ती कूएं के नामकरण से सम्बन्धित है। कूएं की दीवार अनियमित आकार वाले पत्थरों से दो पंक्तियों में बनी हुई है। दीवार की चौड़ाई 56 सैन्टीमीटर है और प्रत्येक पत्थर का आकार 38–24–11 सैन्टीमीटर है।

विस्तृत टीला :– साधारण ऊंचाई का विस्तृत सिरमौरी टीला शिव-मन्दिर से आरम्भ हो जाता है और नष्टप्रायः भग्नावशेष तक फैला हुआ है। इस टीले के ऊपर मन्दिरों अथवा भग्नावशेष महलों के अवशेष यहां वहां बिखरे हुए दिखने को मिलते हैं। ये भग्नावशेष पत्थरों के बने हुए हैं। इन भग्नावशेषों में विशेष उल्लेखनीय इस प्रकार हैं —

पत्थर का ध्वज या स्तम्भ :– पत्थरों के स्तम्भ उत्तरगुप्तकालीन स्तम्भों से अधिक समानता रखते हैं। स्तम्भों के ऊपर ब्यालमुख की आकृति, घट पल्लव, नक्शेदार फूल पत्तियां और ज्यामितिक चित्रकारी की हुई है। स्तम्भों की बनावट सादा एवं मनोहारी है। स्तम्भ का निचला हिस्सा चतुर्भुजाकार, फिर गोलाकार फिर अष्ट-भुजाकार, फिर गोलाकार है। स्तम्भ का ऊपरी हिस्सा चतुर्भुजाकार है तथा शिखर को अपने ऊपर अवलम्बित करता है। शिखर तीन तरफ से कुंडलित है। एक टूटे हुए शिखर का आकार 1.09–0.41 मीटर है। वास्तुकला निर्माण शैली के आधार पर इस स्तम्भ का निर्माण सम्भवतः 10 वीं 11 वीं शताब्दी में हुआ था।

मुख्य द्वार स्तम्भ:– बालू पत्थर का बना हुआ द्वार-स्तम्भ भूरे रंग का है। यह स्तम्भ सप्त तलों वाला है। प्रत्येक तल पर बारीक नक्काशी एवं चित्रकारी की गई है। द्वार-स्तम्भ के निम्न सिरे पर एक पुरुष खड़ा है। इसके गले में बनमाला डाली हुई है तथा हाथ में चंवर है। यह व्यक्ति एक सिंहासन के नीचे खड़े हैं। इनका मुकुट नोकीला है। यह मूर्ति द्वारपाल या दिक्पाल की हो सकती है। इस मूर्ति की बायीं तरफ दो स्त्री-पुरुष किसी फूल की टहनी को पकड़े हुए खड़े हैं। इस फूल के ऊपर एक दैवी स्त्री पुरुष आलिंगनबद्ध बैठे हुए हैं। इस मूर्ति की बायीं तरफ एक स्त्री खड़ी हुई है तथा इस स्त्री की मूर्ति के नीचे पांच फनों वाले नागराज अपने घुटनों पर अराधना की मुद्रा में बैठे हुए हैं।

द्वारस्तम्भ की मध्य शाखा या ताल पर चार चैत्य बने हुए हैं। प्रथम चैत्य में एक युगल आनन्दविभोर मुद्रा में है। दूसरे चैत्य में एक स्त्री पुरुष आमने सामने खड़े हुए हैं। तीसरे एवं चौथे चैत्य के ऊपर इसी प्रकार से आनन्द-विभोर मुद्रा में स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां चित्रित की गई हैं। दूसरे तथा चौथे तल के ऊपर बहुत से स्त्री-पुरुष अपने अपने वाद्य-यन्त्रों के साथ नृत्य एवं वाद्यगान करते हुए चित्रित किए गए हैं। इस द्वारस्तम्भ का आकार 1.79—05—032 मीटर है। आम तौर पर आलिंगनबद्ध मौज मनाते हुए तथा वाद्य यन्त्रों का चित्रण मन्दिर के बाह्य भाग पर होता था जैसा कि कन्दरीय महादेव के मन्दिर खजूराहो, सूर्य मन्दिर कोणार्क और लिंगराज के मन्दिर भुवनेश्वर से स्पष्ट होता है। यह मन्दिर द्रविड़ शैली पर बना हुआ है। इन मन्दिरों के बाह्य भाग पर अत्यधिक सजावट एवं चित्रण है जब कि इनका आन्तरिक भाग, जो देवता का निवास स्थान है, सादा, शान्त एवं धूमिल रहता है। अतः हम इस आधार पर अनुमान कर सकते हैं कि सिरमौरी ताल का मन्दिर द्रविड़ शैली के आधार पर बना होगा। द्रविड़ शैली आठवीं शताब्दी से आरम्भ होकर 11 वीं शताब्दी में पूर्णतः विकसित हुई थी।

पुनः मन्दिरों के ऊपर आलिंगनबद्ध एवं मौज मनाते हुए स्त्री-पुरुषों का चित्रण क्यों हुआ करता था? इस सम्बन्ध में ऐसा समझा जाता है कि इस काल में मध्ययुगीन समाज का नैतिक पतन हो गया था इसलिए इस तरह के चित्रण मन्दिर-स्थानों पर लोग करते थे, जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि समाज में भोग-विलास की प्रधानता थी।

दूसरे मत के अनुसार मनुष्य के सांसारिक जीवन में भोगविलास महत्वपूर्ण है। मन्दिर का बाह्य भाग संसार के भोग विलास का प्रतीकात्मक चित्रण है और मन्दिर का आन्तरिक भाग जो सादा, शान्त एवं धूमिल रहता है, वह स्वर्गिक सुख शान्ति का सूचक है। जिस प्रकार मनुष्य देवता के दर्शन के लिए मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश

Scanned with CamScanner

करने के लिए मन्दिर के बाह्य भाग को छोड़ देवता का दर्शन कर आनन्द एवं शान्ति प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार इन चित्रों के माध्यम से मनुष्य को सचेत किया गया है तथा उन्हें उन भोग विलास आदि सुखों को छोड़ कर उस अनन्त सुख शान्ति को प्राप्त करने का आग्रह किया है जो मन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करने के बाद अनुभव होती है। सम्भवतः मन्दिरों पर इस प्रकार के नग्न चित्रणों का यही कारण रहा हो ।

सूर्य की मूर्तिः–यह बालू पत्थर से निर्मित सूर्य की स्थित-मूर्ति है जो हल्के भूरे रंग की है । यह मूर्ति चार भुजाओं वाली है। ऊपर की दोनों भुजाओं में कमल का पूर्ण विकसित फूल है। इस मूर्ति का आकार 42–47–24 सैन्टीमीटर है।

सप्तमात्रिका की मूर्ति– यह मूर्ति भी बालू पत्थर से निर्मित भूरे रंग की है। सबसे दाहिनी ओर वैष्णवी देवी बैठी हुई है। इनके बाएं तरफ अन्य 6 माताएं बैठी हुई हैं।

इस प्रकार सैंकड़ों टूटी हुई मूर्तियां, स्तम्भ-सिंहासन इत्यादि वहां बिखरे पड़े हैं। इन मूर्तियों के देखने से मालूम पड़ता है कि यह स्थान 9वीं से 10वीं शताब्दी में अवश्य ही कलात्मक तथा वास्तुकला का एक मुख्य केन्द्र रहा होगा।

इस विस्तृत टीले पर आवास के अन्य कोई लक्षण या चिन्ह न मिलने के क्या कारण रहे होंगे ! आवास के लक्षण न मिलने के निम्न कारण हो सकते हैं। गिरी—नदी में बाढ़ आने से सिरमौरी टीले का आवास-चिन्ह बह गया होगा। आवास-चिन्हों पर बाढ़ के द्वारा लाई गई मिट्टी का जमाव हो गया है जो अभी भी कई मीटर तक जमी हुई है। सिरमौरी टीले पर इन दिनों खेती होती रही है और पूरे टीले पर घनी फसल तथा जंगली घास उपजी हुई है जिसके फलस्वरूप, सिरमौरी ताल के टीले पर आवास-चिन्ह नहीं दिख पाये हों।

टीले पर पत्थर का शिवमन्दिर, कुआं तथा भग्नावशेष, मन्दिर अथवा भवन इत्यादि का होना यह प्रमाणित करता है कि सिरमौरी ताल तथा सिरमौर क्षेत्र 10 वीं शताब्दी के दौरान फैलता फूलता कलात्मक स्थल था।

—भाषा एवं संस्कृति विभाग,
परिमहल, शिमला-9

एक परिचय

हिमाचल का पञ्जल क्षेत्र

–अश्विनी कुमार गर्ग

लोक साहित्य एक कवच है जिसके द्वारा हमारी प्राचीन संस्कृति सुरक्षित रही है, कौन कह सकता है कि कि सर्व प्रथम लोकगीत किसने गाया होगा तथा उसे किस आदिकवि ने लिखा होगा और उसका काल क्या रहा होगा ! लोक साहित्य पुस्तक के पृष्ठों पर अंकित न हो कर लोगों के हृदय में अंकित रहता है । प्राचीन संस्कृति के दर्शन करने के लिये ही हमें प्रचलित लोकगीतों लोक गाथाओं मुहावरों तथा लोकोक्तियों में झांकना पड़ता है, उनका अध्ययन करना पड़ता है ।

जहां लोकगीत तथा लोकगाथाएं प्राचीन संस्कृति का एक अंग हैं वहां लोकोक्तियां भी अपने अन्दर पूर्ण रूप से संस्कृति को समेटे हुए हैं । इन लोकोक्तियों में वहां के क्षेत्र का इतिहास भरा पड़ा है । चाहे कोई भी क्षेत्र हो, भाषा हो या बोली हो उसके अपने कुछ प्रचलित शब्द होते हैं, प्रचलित कहावतें होती हैं । ऐसी ही एक कहावत हिमाचल प्रदेश के पञ्जल क्षेत्र के लिए प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है—

**"कालिये भेड्डे मार कुड्ड्दा, कनाली मुट्ठ घमायें गड्डा,
इन्हां गल्लां मेरा पञ्जल बड्डा।"**

यदि इस कहावत का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह वह स्थान (क्षेत्र) रहा होगा जहां से पांच मुख्य नदियां तो नहीं, अपितु पांच मुख्य खड्डें बहती होंगी जिनका आकार छोटी नदियों जैसा ही रहा होगा । या फिर यूं कहा जा सकता है कि यह क्षेत्र पांच मुख्य खड्डों से घिरा हुआ है । परन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि पञ्जल क्षेत्र माना किसे जाए ! कहावत से हमें साफ पता चलता है कि यह वह क्षेत्र है जहां पर "कनाली मुट्ठ, घमाएें गड्डा" एक कनाल क्षेत्र में एक मुट्ठी भर अनाज का उत्पादन होता है और एक घुमाऊं क्षेत्र में एक गड्डी भर अन्न प्राप्त होता है । यानि इस पञ्जल क्षेत्र की भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है जहां से भरपूर अन्न प्राप्त हो सके। तभी तो कहने वाले ने कहा है, "कालिये भेड़ें मार कुड्डा" ! **अर्थात्** हे काली भेड़ ! तू यहां क्या खाएगी तू तो घूम-घूम कर थक जाएगी और तेरा पेट भी नहीं भर सकेगा। हे भेड़ सुन, इसी बात से ही तो पञ्जल की महत्ता है ।

यह कहना कठिन है कि वे पांच खड्डें कौन सी हैं जिन्होंने इस क्षेत्र को पंजल का नाम दिया। पंजल व चंगर का एक ही अर्थ है। तहसील पालमपुर का बहुत सा भाग, तहसील देहरा गोपीपुर और ज़िला ऊना की तहसील अम्ब का कुछ क्षेत्र चंगर ही माना जाता है, क्योंकि इस क्षेत्र में विकास के लिये अभी बहुत कुछ होना शेष है और भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है जिससे स्थानीय लोगों की आवश्यकतायें पूरी हो सकें । यहां यातायात के साधनों की कमी है क्योंकि इन क्षेत्रों में छोटी-छोटी नदियां तथा खड्डें इतनी अधिक बहती हैं कि यहां सरलता से पहुंचना

Scanned with CamScanner

कठिन है । ऐसी बात नहीं कि इन क्षेत्रों में विकास हुआ ही नहीं , परन्तु अभी तक जितना होना चाहिये था उससे कम हो पाया है ।

पंजल क्षेत्र ज़िला ऊना के मुबारिकपुर चौक से आरम्भ हो जाता है । इसकी सीमाएं एक ओर दक्षिण से उत्तर तक स्वां नदीं से ऊपर डूहन्न (धनीक पुरा), धर्मशाला महन्तां, बेहड़ां-भटेड़ां, से होती हुई डाडा सीबा तक पहुंचती हैं तथा दूसरी ओर यह डाडा सीबा से उत्तर पूर्व की ओर देहरा गोपीपुर जिला कांगड़ा को छूती हुई ढलियारा से पूर्व दक्षिण की ओर लोहारा तथा किन्नू गांवों को साथ लेती हुई मुबारिकपुर चौंक से मिलती हैं ।

पजल क्षेत्र की बोली मुख्य रूप से कांगड़ी बोली ही है । ज़िला ऊना का शेष भाग जो पंजल क्षेत्र से बाहर है, पंजाबी का अधिक प्रभाव लिए हुए है । ऐसी बोली जो ज़िला ऊना के अन्य क्षेत्रों में बोली जाती है उसे 'दून की बोली' कहा जाता है। ऐसी बात नहीं है कि इन क्षेत्रों में आपसी सम्बन्ध नहीं हो पाए हों। बहुत से रिश्ते-नाते हैं—पंजल तथा दून क्षेत्रों में बसने वाले लोगों के मध्य। यदि कोई व्यक्ति पञ्जल क्षेत्र से अपने रिश्तेदारों के यहां दून में जाता है तो अकसर दून के लोगों को यह कहते सुना जाता है कि यह पञ्जल से आया है ।

मुझे अपना बालपन खूब याद है जब मैं अपने नानके जाया करता था, बहुत छोटा था । बस यही कोई सात आठ वर्ष का रहा हूंगा । मेरे नाना जी मुझे छेड़ ही छेड़ में कह देते "आ भाऊ पांजलिया ! उसी क्षण मेरे अन्तःकरण में बहुत से प्रश्न उठते और मिटते । कभी हीनभावना पैदा होती तो कभी अपने पहाड़ी क्षेत्र पर गर्व होता । पांजले ज़िला कांगड़ा के तहसील पालमपुर में भी पाए जाते हैं । वहां पर एक छोटे से क्षेत्र में लगभग सभी जातियों के लोग रहते हैं, जिन्हें पांजले कहा जाता है । अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कभी ये लोग इस पञ्जल क्षेत्र से ही जाकर वहां बस गए होंगे और इस प्रकार उन्हें तब से ही पांजले कहा जाने लगा होगा ।

हमें अपने पहाड़ी क्षेत्र पर गर्व होना स्वाभाविक ही है । हमारी समस्यायें कठिन अवश्य हैं, परन्तु यही समस्यायें हैं, जिन्होंने यहां बसने वालों को स्फूर्ति का दान दिया है। कठिन से कठिन कार्य सहज में ही करने की क्षमता दी है और दिए हैं—बहुत से लाल, जो सदैव देश रक्षा के लिए सीमा पर अडिग प्रहरी बन कर खड़े रहते हैं । फिर क्यों न हमें अपने क्षेत्र पर गर्व हो !

—आकाशवाणी, शिमला ।

समीक्षा

सहज कहानी : नारा नया बात पुरानी

—डा0 सत्यपाल चचड़ा

कहानी जगत में समय-समय पर शिल्प एवं कथ्य के आधार पर अनेक नये नये प्रश्न उठते रहे हैं । कभी उन प्रश्नों में बहुत ही मौलिक समस्याओं को उभारा गया है तो कभी समकालीन स्थिति को नयी दृष्टि एवं नये परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया गया है । नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, सहज कहानी—आदि नये-नये नामों से कहानी सुशोभित की जाती रही है ।

संभवतः नये-नये नाम तत्कालीन जड़ता को मिटाने के लिए समय-समय पर कहे गये हैं, जैसे नये परिधान पुराने से ज़रा हट कर ही बनाए जाते हैं । उद्देश्य तो तन ढकना ही होता है किन्तु परिवर्तन का कुछ अपना ही आनन्द होता है । संभवतः इसी दृष्टि से कहानी को नवीनतम नाम 'सहज कहानी' देने का काम किया है डा0 सुशील कुमार फुल्ल ने । यह संज्ञा 'फुल्ल' ने सत्तरोत्तरी कहानियों के लिए दी है । इससे पहिले भी इस संज्ञा का प्रयोग सहज कहानियों में दो बार किया गया है। सम्पादक ने 17 कहानियों के संकलन को सम्पादित कर एवं प्रकाशित करवा कर 'सहज कहानी' को स्थापित करने का प्रयत्न किया है । अतः 'सहज कहानियां' संकलन का इस दृष्टि से विशेष महत्व है तथा इस संकलन की कहानियों के माध्यम से 'सहज कहानियों' को जानना उचित होगा ।

'सहज कहानियां' संग्रह में निम्नलिखित लेखकों की कहानियां हैं : सुधीर महाजन (एक कदम आगे), डा0 व्यथित (मुरली), शमी शर्मा (छैलो), प्रेम भारद्वाज (निवृत्त), कर्म चन्द श्रमिक (बेनूर), राजगोपाल शर्मा (वह मुस्कान), अशोक सरीन (सिसकियां), रश्मि मधुप (वह रुक न सकी) शिव उपाध्याय (धुंधले खाके), डा0 सुशील-कुमार फुल्ल (मां), ओम प्रेमी (अधजली लाश), शेष अवस्थी (अजात शत्रु), रमेश शर्मा अरुण (यादों का चिराग), कुलभूषण कायस्थ (प्यासी आंखें), ठाकुर दास शर्मा पालमपुर (अजगर स्वतंत्र हो गया), मनोहर शर्मा सागर पालमपुरी (लोक-परलोक), तथा सोम शर्मा (पहाड़ी झरना) ।

साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है । कांगड़ा लोक साहित्य का पहला दर्पण मेरे हाथ में है ताकि मैं समाज अर्थात हिमाचल के इस विशिष्ट भाग के समाज को उस दर्पण द्वारा देखूं जिसे 17 शक्तियों ने बनाया और साज-सज्जा की प्रकाशक—'गोयल बुक डिपो-पालमपुर' ने । दर्पण का मूल्य पहले तो कुछ अधिक प्रतीत हुआ किन्तु हिमवन्त के प्रांगण में बसी कांगड़ा घाटी को पूर्ण रूप से देखना जो है अतः मूल्य अधिक नहीं है । कहानियों में जिन समस्याओं को उभारने की चेष्टा की गई है उन की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है ।

---

1. सहज कहानियां (1976) प्रमुख सम्पादक-डा0 सुशीलकुमार फुल्ल-कहानी और सहज कहानी, पृ05-7 प्रकाशन-गोयल बुक डिपो, पालमपुर (कांगड़ा), 2. हिमप्रस्थ, वर्ष 22, अंक मार्च '76, पृ0 42' 3. 'आजकल' हिन्दी मासिक, दिसम्बर, 76, वर्ष 32 अंक, 8 पृ0 15

"भगवान ने इन्हें सन्तोष का इन्जेक्शन कुछ अधिक मात्रा में दिया होता है ।" ये उद्गार हैं लेखक के,
एक सीधे सच्चे श्रमिक 'मुरली' के लिए । इन के दु:ख दर्द में दूसरों का सुख पलता है, विकास बढ़ता है, जीवन
अंगड़ाइयां भरता है । स्वतंत्र भारत 27 वर्ष का हो गया, किन्तु श्रमिकों की समस्याएं यथापूर्व प्रश्नचिन्ह लिए
पूरा वाक्य बनी हैं । इधर मास्टर तो बजट के सन्तुलन को ठीक बिठाने के लिये "सिसकियां" में मानसिक सन्तु-
लन खो बैठते हैं और रजाई ओढ़े कुढ़ रहे हैं कि तीन सौ रुपया मासिक वेतन होता ही कितना है। गरीबी की
समस्या को 'वे धूंधले खाके' के लेखक ने अच्छा उभारने की कोशिश की है जहां देव भूमि की कहान देवी, भारत
की आदर्श ग्राम्या, सौम्य और सरलता का अक्षय भण्डार—सुखी केवल तीन सौ रुपये में एक लंगड़े जुलाहे को
बेच दी जाती है । बेमेल विवाह की ओर इंगित मिलता है—हिमाचल के इस अंचल में । परम्परागत संस्कार
और रूढ़िवादी विचारों का गरीबी के साथ चोली दामन का साथ है । "छेलो" एक गद्दण है और श्याम
लाल के प्रति आकृष्ट है । श्यामलाल शिक्षित एवं सम्पन्न घराने का लड़का जब विवाह प्रस्ताव रखता है
तो 'गद्दियों का कभी जांदरों से ब्याह होता है" कह कर स्वर्ण अवसर खो दिया जाता है ।

सामन्तवादी कहानी "अजगर स्वतंत्र हो गया" में अस्पृश्यता के दर्शन होते हैं । "बन्तो जाति की जुलाही थी और मुखिया ऊंचे खानदान का राजपूत । बन्तो के घर जा कर वह एक दम सोशिलिज्म इख्तयार कर लेता था और इस की पकी चीजें बड़े शौक से खा लिया करता था परन्तु बन्तो जब उन के घर जाती है तो वह उनके चूल्हे तक नहीं जा सकती थी । बन्तो अपने घर में तो एक राजपूतनी सी रहती और दिलदार के घर में एक जुलाही थी..........एक अछूत ।

'दहेज' के प्रति आक्रोश मिलता है—कहानी "यादों के चिराग में" जिस दहेज पर बाप के दिल के टुकड़े बिन जाते हैं, जिस दहेज की बलिवेदी पर बार सब कुछ समाप्त हो जाता है....... धिक्कार है तुम जैसे नव युवकों को जो चान्दी के चन्द टुकड़ों पर इस अनमोल जीवन को बेच देते हैं । तुम ने नारी को हर समय बाह्य आवरण में ही देखा.... उस के आन्तरिक देवी स्वरूप को न निहारा ....क्या "सहज कहानियां" में इस नारी का आन्तरिक स्वरूप "दैवीय है ?"... दूसरे कहानीकारों ने नारी को किस रूप में देखा है, आईए ज़रा हम भी देखें।

"छैलो" में नारी रूपसी गद्दण है और "पहाड़ी झरना में मदमाती नगर बधू ।" 'वे घुंधले खाके' में लेखक ने एक ओर पतिव्रता सुक्खी को कुष्ठग्रस्त पति की सेवारत पाया है तो दूसरी ओर · · · सिल्ली · · · को तितली की भांति फूल फूल का रसास्वादन करते हुए । 'वह मुस्कान' की नारी केवल पूज्या है । बड़ी बहिन को ही बहिन स्वीकारा गया है। जो कुछ मिल पाता है तो उसी से । छोटी बहिन तो कर्तव्य होती है । सिसकियों में नारी पति की अच्छी साथिन है जो अपने पति को ग्यारह नम्बर की बस से बचाने के लिए आठ आने का सिक्का जेब में डाल देती है । नारी पति की मानसिक यन्त्रणा से सजग है । 'वह रुक न सकी' की देवी 'नियुक्ति पत्र' के रद्द होने पर इतनी त्रस्त नहीं, जितनी कराड़ की क्रूर आकृति से । "मां" में नारी मां ही है पर उसमें सास के सभी गुण मौजूद हैं जिसके लिए सास प्रसिद्ध मानी जाती है । बहू 'सुपर्णा' संयत एवं मर्यादा में रहने वाली नारी है जो सास के स्वभाव से विचलित नहीं होती । "अधजली लाश" की नारी सत्तर वर्षीय प्रौढ़ा है एवं यक्ष्मा रोगिणी । रोगिणी का चरित्र उभर नहीं पाया है । "यादों के चिराग" की नायिका पहले एक प्रेयसी और फिर पत्नी है, किन्तु प्रेयसी ऐसी वैसी नहीं– पत्नी को भी मात करने वाली ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इतनी सुन्दर कृति के लिए लेखक अभिनन्दनीय है तथा 'सहज कहानी' का नामकरण सर्वथा उपयुक्त है ।

—कृषि कम्पलैक्स,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
पालमपुर, कांगड़ा, हि0प्र0 ।

2

पुस्तक : एक अटूट सिलसिला
लेखक : डा0 मस्त राम कपूर
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, 3543 जटवाड़ा, दरिया गंज, नई दिल्ली-11002
मूल्य : रु0 15.00
पृष्ठ : 227.

डा0 मस्त राम कपूर का उपन्यास 'एक अटूट सिलसिला' वास्तव में टूटे हुये सिलसिलों का सामंजस्य है । भारतीय समाज भावनात्मक रूप से एक होते हुये भी शताब्दियों से वर्णधर्म के अप्राकृतिक परन्तु कठोर तथाकथित नियमों के कारण बुरी तरह से खण्डित रहा है । लम्बे इतिहास के पन्नों को जब हम बदलते हैं तो हम पाते हैं कि इन नियमों के खण्डन की जितनी बातें होती हैं उतने ही इन के कठोर परिपालन के उदाहरण सामने आते हैं। पिछली एक शताब्दी से भारतीय समाज के समन्वय की आवश्यकता को अधिक गम्भीरता से महसूस किया गया है । छुआछूत ऐसा रोगाणु है जो भारतीय समाज को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रहा है।

छुआछूत की इस सामाजिक असमानता के निवारण के लिये समाजसुधारक और साहित्यकार हमेशा अपना योगदान देते रहे हैं । इसी वातावरण में लिखा डा0 कपूर का यह उपन्यास इस समस्या का सही चित्रण है।

खैरा गांव (जिला कांगड़ा) का एक परिवार—पण्डित नित्यानन्द, उस की पत्नी पार्वती, लड़का दिवाकर और उन की पुत्री रमा का होने वाला पति अमर-लूणी खड्ड के किनारे त्रिवेणी के पवित्र स्नान के लिये चल पड़ता है । बैजनाथ में जब कोई कुली सामान उठाने के लिये नहीं मिलता तो एक अठारह वर्ष की लड़की रूपा को साथ लेते हैं जो हरिजन की बेटी निकलती है। पंडिताइन नाक-भौं चढ़ा कर खाना खुद उठाती है । केवल परिवार के सदस्यों से कुछ अलग सोई परन्तु सख्त सरदी से ठिठुरती रूपा से दिवाकर कुकर्म करता है, परन्तु सरदी से कांप रहे शरीर की सुरक्षा करता है, अमर आधी रात को अपना कंबल दे कर । प्रात: अमर का कंबल रूपा के पास देख कर पण्डिताइन क्रोध से लाल-पीली होती है और अपनी पुत्री रमा की अमर से शादी तोड़ देती है । समय आने पर जब भेद खुलता है तो दिवाकर गर्भवती रूपा को साथ ले कर रातों रात अपना इलाका छोड़ने पर विवश होता है । पण्डित नित्यानन्द के परिवार को इस 'कुकार्य' के लिये बिरादरी से निकाल दिया जाता है । अमर समाज सेवा में रत्त है ; ज़मीन-मालिकों और मुज़ारों से झगड़े में कोतवाली तक पहुंचता है । समाज से निष्कासित परिवार की लड़की रमा से विवाह करने के लिये अमर अपने मित्र कृष्ण को राज़ी करता है, परन्तु मौके पर इन्कार करने के कारण रमा का विवाह हट फिर कर अमर से हो जाता है ।

कहानी बड़ी साधारण है, परन्तु इस के माध्यम से लेखक ने ग्रामीण जनता की जटिल समस्याओं को जिस प्रकार सुलझाया है उस के लिये वे बधाई के पात्र हैं । उन्होंने गांव की समस्याओं को बड़ी गहराई से देखा

Scanned with CamScanner

है । उन्होंने इन समस्याओं के साथ अपने अपनत्व को ढाला है । वे ग्रामीण जीवन से भली भांति परिचित हैं और वर्तमान उपन्यास में लेखक ने ग्राम के सभी पहलुओं को छूआ है । जाति-पाति के आडम्बर को देखिये—पंडिताइन हरिजन की छाया से डरती है, रूपा के छुए भोजन को नहीं खा सकती, उस से अपने पेड़े दूर रखती है । रूपा सरदी से कांप रही है, परन्तु पण्डिताइन फालतू कंबल को अपने सिर के नीचे रख देती है । हरिजन घर के अन्दर नहीं जा सकता परन्तु दिवाकर की लालसा अस्पृश्यता से बेबहरी है । तब उसे अस्पृश्यता दिखाई नहीं देती । यही समाज की सब से बड़ी कमजोरी है । पण्डित के शब्दों में यह सारा संसार ही पाखण्ड है । जिधर देखो उधर नकली रूप दिखाई देता है .... यही आजकल की सभ्यता है । इसी पाखण्ड को दूर करना ही सब से बड़ा समाज सुधार का काम है और इस दृष्टि से अमर से भी अधिक विशिष्ट काम पण्डित नित्यानन्द का है । उस ने पहले समाज के विरोध का कड़ा मुकाबला करते हुये विधवा से विवाह किया, लोगों की बिरादरी से बाहर निकालने की धमकी की चिंता नहीं की और बाद में, जब उसे गर्भवती हरिजन लड़की रूपा के जीवन का ख्याल आया तो अपने लड़के अमर को सलाह दी कि वह उसे अपना ले चाहे उसे घर छोड़ना पड़े।

हमारा समाज परम्पराओं और मर्यादाओं का महल है परन्तु जो परम्पराऐं बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल नहीं ठहरतीं उन्हें तोड़ना ही पड़ेगा । इसी में समाज की भलाई है ।"गांव में सब से बड़ी बुराई यह है कि कितना ही महान आदर्श उनके आगे खड़ा हो, परन्तु यदि परम्पराओं से चल रहे आदर्श को ठेस पहुंचे तो वे कमर कस कर लड़ने को तैयार हो जाते हैं (पृ0 151)." इन्हीं बनावटी दीवारों को तोड़ना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है और लेखक इस में सफल हुआ है परन्तु उपन्यास के पात्रों की सफलता विभिन्न सोपानों में हुई है । जहां अमर इस दिशा में पूर्णतया सफल है, नित्यानन्द की सफलता अनुभव के कारण है और दिवाकर की केवल मजबूरी के कारण, जबकि कृष्ण की सफलता बहुत निम्न कोटि की है। सम्भवतः लेखक कृष्ण को किसी और दृष्टि से उपस्थित करना चाहते थे, परन्तु वह दृष्टि स्पष्ट नहीं हुई है । हो सकता है कि दिल से वह रमा और अमर का विवाह चाहता था और अपनी भूमिका केवल इस कड़ी को सुदृढ़ बनाने के लिये निभा रहा हो, परतु यह बात स्पष्ट नहीं है।

वर्तमान समय में दो पीढ़ियों के बीच कड़ा संघर्ष है—एक पढ़ी लिखी पीढ़ी जिसे विज्ञान के चमत्कार में अतीत की कोई विशिष्टता नजर नहीं आती, दूसरी अपढ़ पीढ़ी जिसे प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के उल्लंघन में अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। इसी संघर्ष में शहरी और ग्रामीण जीवन की गहरी खाई है । शहरों की सुविधाओं को देखते हुए गांव को नरक की परिभाषा देने में क्या सचाई है? (पृ0 40) । इसीलिये अमर और उसके साथी गांवों में वे सभी सुविधायें जुटाना चाहते हैं जो यहां ज़रूरी हैं —स्कूल, अस्पताल, पक्की सड़कें, पानी के नलके, डाकघर आदि। तभी गांवों से शहर की ओर जाने की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है अन्यथा, शहर का जीवन किसी भी भांति उत्तम जीवन नहीं है। "शहरों की चकाचौंध दूर से ही अच्छी लगती है।" शहरी और ग्रामीण जीवन की खाई को सुविधाओं में समानता लाने से काफी हद तक दूर किया जा सकता है, परन्तु परम्पराओं को तोड़ना सहज कार्य नहीं है । गांवों में लड़की शादी के बारे में अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति देने का भी अधिकार नहीं रखती । अमर के पूछने पर पंडित जी बौखला उठते हैं, 'यह शहर नहीं है । लड़की से पूछने का यहां प्रचलन नहीं है ।' चाहे बात शुकरू अपनी पुत्री रूपा के बारे में कहता है परन्तु सभ्यता के इस नये दौर में कुछ मर्यादायें अपने आप समाप्त होंगी क्योंकि उन के लिये नये समाज में स्थान नहीं है । पंडित उपर्युक्त कथन कर तो बैठता है परन्तु वास्तविकता उस के मन को कचोटती रहती है और घर आ कर वह यही प्रश्न अपनी पत्नी पार्वती से पूछता है और, उधर शुकरू के न पूछने पर भी रूपा कह देती है, 'बापू, सारे गांव के सामने तमाशा करने से क्या फायदा, चाहे कुछ हो वहां शादी नहीं करुंगी । (पृ0 65) ।'

एक ही समाज में, एक ही वातावरण में, समान परिस्थितियों में रहती हुई दो भिन्न जातियों की इस करुण गाथा को मूल में रखते हुये लेखक ने 'एक अटूट सिलसिला' में ग्राम-प्रधान भारतीय समाज की मूल-भूत अनेक समस्याओं का सही चित्रण दर्शाया है—पुराने रजवाड़े, उन के उत्तराधिकारियों के शिकंजे, पंचायतों में उन का बहुमत, पुलिस के अत्याचार, बड़े जमींदारों का मुज़ारों पर अत्याचार, बेरोज़गारी, ऋणों का बोझ, इत्यादि हर पहलू पर उपन्यास में चर्चा है।

डा0 कपूर की भाषा बड़ी चुस्त और प्रभावशाली है। वास्तव में उन की शैली में ऐसा आकर्षण है कि एक बार पढ़ना आरम्भ करो तो छोड़ने को दिल नहीं करता । उन की शब्द-सम्पदा बड़ी समृद्ध है और उन की वाक्यावली में सरसता है । कुछ उदाहरण देखिये—'पण्डित जी बोलते थे तो बेलगाम, चुप रहते थे तो बेजान, सत्वाणी पहुंचते पहुंचते बारह बज गये, घड़ी में भी और उन लोगों के चेहरे पर भी, 'मैं ने हल की मूठ पकड़ कर अपना ब्राह्मणत्व खो दिया है' । चुस्त और आकर्षक भाषा के साथ-साथ डा0 कपूर का अन्दाज़-ए-बयां भी बड़ा सरल और सुबोध है उन की दार्शनिकता भी बड़ी अनूठी है । प्रेम श्रद्धा की बात करते हुए वे लिखते हैं, 'वह प्रेम नहीं था, क्योंकि उस में अधिकार पाने की भावना थी ।' प्रेम की कितनी स्पष्ट तस्वीर है। इसी अधिकार की भावना ने आज तक समाज में क्या नहीं किया है। हर कोई प्यार करता है तो अधिकार जतलाता है । जहां अधिकार का प्रश्न आता है वहां सौम्य, श्रद्धा और सम्मान को स्थान नहीं मिलता । पूरा उपन्यास दोनों—वातावरण और शब्दावली में पहाड़ी आंचलिकता का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है । सुर, बझिया, भगत, बेहड़ा, पाहू, साझी, पथ, छतरोड़ा, बिन्ना, बाहरके आदि शब्दों का प्रयोग इतना स्पष्ट है कि इस क्षेत्र से बाहर के पाठकों को भी इन के समझने में कठिनाई नहीं हो सकती, बल्कि पहाड़ी संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिये ऐसे पहाड़ी शब्दों का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर है।

—एम0 आर0 ठाकुर,
वरिष्ठ प्रवक्ता, भाषा एवं
सांस्कृतिक विभाग, हिमाचल प्रदेश।

3

मिंजरां (काँगड़ी कविता संग्रह)

कांगड़ी लोक साहित्य परिषद् ने 'मिंजरां' नाम से कांगड़ी काव्य संग्रह अक्तूबर, 1977 में प्रकाशित किया है। इसकी पृष्ठ संख्या 136 है जिसमें सताईस कवियों की कविताएँ संकलित हैं। पहाड़ी काव्य संकलन तो सरकारी विभाग से इस के पहले भी छपे हैं परन्तु केवल कांगड़ी कविताओं का यह संकलन सम्भवतः प्रथम है। अन्दर के आवरण के सामने के पृष्ठ पर लिखा गया है—"कांगड़ा क्षेत्रीय प्रतिनिधि पहाड़ी काव्य संकलन मिंजरां' और इसके भीतरी पृष्ठ पर लिखा गया है—पहाड़ी काव्य संग्रह। प्रतिनिधि शब्द से कुछ भ्रम उत्पन्न होता है, यदि आवरण के सामने के पृष्ठ पर यह 'प्रतिनिधि' का प्रयोग न किया होता, और इसका प्रयोग करने का लाभ भी कोई न था, सम्भवतः यह संकलन अपने में एक बड़ा महत्व रखता। 'प्रतिनिधि' शब्द ने कुछ बात बिगाड़ दी। कविता क्षेत्र कला की साधना का क्षेत्र है, प्रत्येक साधक प्रतिभा के अनुसार साधना करके कुछ प्राप्त करता है और समाज की सेवा के लिये उसका अर्पण करता है। समाज अपनी जरूरतों के अनुसार उस से प्रेरणा ग्रहण करता है और जब उसकी जरूरत नहीं रहती तो उसे छोड़ देता है। कला के फल कभी भी प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। किन्हीं को प्रतिनिधि कह देना दूसरों का अपमान करने के बराबर है। इस संकलन में मनोहर सागर पालमपुरी की कविता भी कांगड़ी के इस तथाकथित प्रतिनिधि संकलन में आने के लायक नहीं थी। भगत राम मुसाफिर की कविता भी इस में नहीं, क्या उन्हें हमीरपुर का समझ कर छोड़ दिया गया? ऊना के अश्विनी गर्ग और खुशी राम शर्मा की भी कविताएं नहीं हैं। अश्विनी गर्ग आकाशवाणी में कांगड़ी कार्यक्रम के इन्चार्ज हैं, अश्विनी गर्ग की कुछेक कवितायें इस संकलन के लायक अवश्य थीं। हमारा अभिप्राय केवल इतना है कि काव्य संकलनों पर और खास कर क्षेत्रीय भाषाओं के काव्य-संकलनों के आवरण पृष्ठ पर प्रतिनिधि शब्द का प्रयोग करके कुछेक को व्यर्थ में नाराज़ करने को गल्ती नहीं करनी चाहिये। इससे भाषा को भी, और विद्वानों को भी ठेस पहुंचती है।

जिन सताईस कवियों की कवियायें इसमें संकलित हैं, उनका सम्पादन परिश्रम से किया गया है। यह बात कांगड़ा लोक साहित्य परिषद् के श्रेय में जाती है कि कांगड़ी कविता का एक संकलन तो निकला और वह भी सम्पादित करके। आरम्भ में श्री गौतम व्यथित की भूमिका 'आज की कांगड़ी कविता' शीर्षक से समीक्षा के दृष्टिकोण से उपयोगी है।

संकलित कविताओं में कुछ एक उदाहरण आम पाठकों की जानकारी के लिये उद्धृत किये जा रहे हैं:—

1. आखर कम्मे औणे रातीं।
   अपणा अपणा खिद खंदोलू॥

   (—परमानन्द)

2. प्रेम ठिकाणा कोई इक तोपा,
   प्रीतां बिच्च खलार नीं चलदा।

   (—प्रेम भारद्वाज)

हंस राज उपाध्याय 'सुषम' की कविता 'चंगरे दा वणजारा' अपनी गहराई वाले और सतही दोनों दृष्टिकोणों से एक नया आयाम है:—

चिक्का दा वणेआ गजरा मेरा,
चिक्का दे माहणू सारे।
गोरियां बाहीं कालियां बंगां,
नैण तेरे कजरारे।

सुणाई खणकारा इन्हां बंगां,
लख्खां मजनू मारे।

सौण महीने बिजली लशके,
जियां बंगां दा लिशकारा।

मुलखराज शांतलवी का एक गीत 'छणकदा चूड़ा' वीर रस और देशभक्ति के विचार से अपना उदाहरण आप है। रक्षा कुमारी की कविता 'अमलतास' में मानवीय भावना और प्रकृति के पेड़ में एकमेक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति है। रक्षाकुमारी की तीनों कवितायें कांगड़ी कविता की प्रौढ़ता की साक्षी हैं। पीयूष गुलेरी और गौतम व्यथित तो विख्यात हो चुके हैं, ओमप्रकाश प्रेमी की पंक्ति बहुत मनोहर बनी है—'नचदी कुददी रही जुआनी, कुआरी गल गलाणी'। ओम प्रकाश सारस्वत की एक पंक्ति 'ननदां कुआरियां, से अड़ी रहंदियां', एक स्थिति चित्रण है जिसे कोई भावज ही समझा सकती है। पवनेन्द्र की दो पंक्तियां देखें:—

आये तां थे तेरियां अक्खां च वस्सणा,
खलका दे छज्जां च लग्गे छंडोणा।

रश्मि मधुप एक अध्यापिका है, उनकी तीन कवितायें इसमें संकलित हैं। प्यार की भावना की अनूठी अभिव्यक्ति इन में दर्ज है। आशा और विश्वास को अपनी गोद में छुपा कर जीवन जीने का एक पाठ इनमें है। वह प्यार को एक भावना समझती है, अतः मांग कर प्यार लेने की जरूरत महसूस नहीं करती, जीवन सोच समझ का नाम है अतः दुखों से भरपूर है और प्यार जीवन से अलग है, वह तो पूजा है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:—

1. प्यार तां पूजा है, जिंदगी नई होई सकदा।
2. पर प्यार ता भावना है,

मंगी कै लैणे दी-तां मिंजो गरज नईं, सिली रहणा।

कुलदीप डोहरु आज की व्यस्त जीवनशैली की शब्द तस्वीर खींचने में खरे उतरे हैं। उनकी एक कविता 'क्या बुरा नाम" से संकलित है, उस में लोकोक्तियों का संकलन है। एक उदाहरण—

तड़फदी नुहार बुरी, प्यारे दी बहार बुरी,
चमकदी तलवार बुरी, हसदी नार बुरी।

कुल मिला कर यह पुस्तक दो दृष्टिकोणों से उपयोगी और महत्वपूर्ण है—एक यह कि इसमें कुछ ऐसे कवि [प्र]काशित हुए जो सरकारी कविसम्मेलनों में नहीं बुलाये जाते थे, दूसरे यह कि सम्पादन सफल है। सीमा [य]ह रह गई है कि हमीरपुर, ऊना, भटियात और घुमारवीं इसमें नहीं हैं।

—'विवेक'

STUDIES IN THE SYSTEMATICS OF HIMACHALI LINGUISTICS

—Dr. Siddheshwar Varma

Dear Friend,

You will be interested to learn that the masterpiece "पहाड़ी भाषा" by Shri M. R. Thakur lies on a separate Table as an absolutely single entity in my library during the whole day. Its peerless status as scientific production is undeniable, but it is a pity that the irony of fate has led its production to depend too much on the primitive methods of Grierson. The daily दर्शन of this book has fired my ambition to represent हिमाचली on International status, so instead of the "specimens" given in this book, I propose, that the world-wide "Story of the Wind and the Sun" published in 1949 by the International Phonetic Association, London, may be translated into all the हिमाचली speeches for this purpose. I reproduce here below the "हिन्दुस्तानी" version of this story as follows—

"हवा और सूरज इस बात पर झगड़ रहे थे कि हम दोनों में ज्यादा ताकतवर कौन है, इतने में गरम चोगा पहने एक मुसाफिर उधर आ निकला। इन दोनों में यह ठहरा कि जो कोई पहले मुसाफिर का चोगा उतरवा ले वह ही ज्यादा ताकतवर समझा जाएगा। इस पर हवा जोर के साथ चलने लगी, पर वह ज्यूं ज्यूं जोर में बढ़ती गई त्यूं त्यूं वह मुसाफिर अपने बदन पर चोगे को और भी ज्यादा लपेटता गया। आखिर में हवा ने अपनी कोशिश छोड़ दी। फिर सूरज तेजी के साथ निकला, और उस मुसाफिर ने झट से अपना चोगा उतार दिया। इसलिये हवा को मानना पड़ा कि हम दोनों में सूरज ही ज्यादा ज़बरदस्त है"।

It may further be interesting to learn that I have secured a translation of this story in about 50 languages, one of these being the pronunciation of Danish from the mouth of Professor Hans Hendrikson, whose "Himachali Studies" 1976, has been recently published.

—2—

I. INTRODUCTORY:

For the sentence "The younger son, having taken his share, went away to a far off country", the विशाऊ equivalent is as follows:

काणछे छोटे आपणा वांडा लईरो दूर देशो-खे डेओ गोवो Here only two words will be discussed *viz.*, (1) लईरो (2) डेओ, गोवो।

लईरो

It is an interesting structure, in the sense of "having taken", which has used the genitive suffix रो after the participle from लई, an ingenious exploitation of a nominal suffix for conjugational purposes. The problem is to trace this novel processive course.

डेओ गोवो

This is a very remarkable use of Tibetan "डो" to go, the processive stages of this novel structure have to be traced.

–3–

INTRODUCTORY

For the sentence "then he implemented the distribution of his property among them," being parallel to मण्डियाली, the बघाटी epuivalent is as follows:—

तब्ब, तेन्नीए तिन्नाखे आपणो घरचो बांटी दित्ती (Page—85)

Here only two words तेन्नीए, तिन्नाखे and घरचो will be discussed.—

(1) In the pronouns तेन्नीए—तिन्नाखे, the basic aspirate /ए/ has been elicited. The problem before us is to trace the processive stages, through which this/ए/ so fundamental for the expression of plurality, has been elided. Tentatively it may be assumed as one of the conditional factors.

(2) घरची for "property", is an interesting example of stylistic usage, which, however for demonstration, stands in need of typologies, for which we expect some organized teams of assistants who should collect such types.

–4–

I. INTRODUCTORY:

In the क्योंथली parallels, which were entirely omitted regrettably through my absent mindedness, three notable words, occurring on page 87, will be discussed भाणछे, छोड़्ड़े and छोड़्टूए

(1) भाणछे is a very impressive form appearing as a complex of many elements.

(a) Sanskrit मानुष (Turner 10049), of which parallels like माह्णु in पहाड़ी are well known but सिरमौरी माणछ has been connected further with sanskrit मर्स (Turner 9888) kashmiri, moch; Dardic Kalasha, moc.

(b) छोड्ड़े Though having a prakrit base in chodi, this base is supposed to be of Iranic origin (Turner 5170) Dardic Shina Chutu "small"

(c) छोड्टुए is a marvellously unique form which requires a thorough discussion. Turner's data are miserably poor, but the data in 5069 etc. mention Kashmiri chukar "tad".

It seems that क्योंथली is a relic of linguistic systems which verified two initiatives—

(a) nasalization and vocalization in the syllable with-kr-.

(b) extension of the word by a wonderfully peculiar-ट-suffix, the processive stages of which require exploration—a— problem for the future.

35B, Defence Colony, New Delhi-24.

यशपाल परिशिष्ट

क्रान्तिकारी यशपाल

—डा0 अभिमन्यु

यशपाल के पूर्वज हिमाचल प्रदेश में स्थित वर्तमान हमीरपुर ज़िला के (भूम्पल) ग्राम के निवासी थे। इनके पिता हीरा लाल एक साधारण व्यवसायी थे और इनकी माता प्रेम देवी उच्च कुलोत्पन्न सुशिक्षित महिला थी। परिवार की आर्थिक स्थिति कोई अच्छी नहीं थी, इसलिए प्रेम देवी ने पति का सामीप्य छोड़ कर फिरोजपुर छावनी में अध्यापिका की नौकरी कर ली थी। यशपाल का जन्म यहीं पर 3 दिसम्बर, सन् 1903 ई0 को हुआ था। सन्तान का पालन पोषण ठीक ढंग से हो सके और उसका भविष्य उज्जवल बन सके, ऐसा मन में विचार कर ही इनकी माता ने नौकरी स्वीकार की थी। वे उच्च विचारों से समन्वित आदर्श गृहणी थीं। आर्य समाज के श्रेष्ठ विचारों से उनका जीवन विभूषित था। समाज सेवा, नारी जागरण, अशिक्षा निवारण और अन्ध-विश्वासों के निराकरण में ही उनका सारा समय बीत जाता था। आर्य समाज के सुधारवादी विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने यह क्रान्तिकारी कदम उठाया था, अन्यथा उस समय पंजाब के अविकसित पहाड़ी क्षेत्र की किसी महिला के द्वारा परम्परागत नारी जीवन की लीक से हट कर अध्यापिका बन जाना और उसके द्वारा जीवन-यापन का मार्ग खोज लेना, सहज ही अकल्पनीय था। ऐसी क्रान्तिकारी मां की कोख से जन्म लेना यशपाल के लिए सौभाग्य की बात थी।

यशपाल को क्रान्ति की भावना पारिवारिक संस्कारों से प्राप्त हुई थी। उन्होंने सिंहावलोकन भाग 1, पृष्ठ 37 पर क्रान्तिकारी बनने के कारणों की ओर संकेत करते हुए लिखा है—'सशस्त्र क्रान्ति की ओर मेरी इस प्रवृत्ति में मुझे अनेक कारणों और परिस्थितियों का प्रभाव दिखाई देता है, जिनमें सामाजिक भावना, अपनी पारिवारिक और आर्थिक स्थिति और अपने वातावरण से ली हुई प्रेरणा में सभी कुछ मिले जुले हैं।' इस सन्दर्भ से स्पष्ट है कि उनके क्रान्तिकारी जीवन के मूल में पारिवारिक संस्कार, सामाजिक भावना, आर्थिक स्थिति और वातावरण का प्रभाव विद्यमान था। यहां वातावरण से अभिप्राय उनकी शिक्षा दीक्षा, भारत की तात्कालिक राज-नैतिक स्थिति तथा उनका सहयोगियों के साथ संसर्ग से है। यदि इसमें उनकी स्वतन्त्र रहने और होने की मूल प्रवृत्ति, स्वतन्त्र चिन्तन और अनुभव को भी जोड़ दिया जाए तो उनके जीवन के मूलगामी स्वर को भली भांति समझा जा सकता है। इस तथ्य का समर्थन उनके निम्नलिखित उद्धरण से दिया जा सकता है—"ज़ोर और जब्र के प्रति असन्तोष, घृणा और द्वेष अनुभव किये बिना इनका विरोध करने की इच्छा भी नहीं हो सकती, यह बात केवल मैंने ही अनुभव की हो, सो बात नहीं।" उनकी इस भावना का समर्थन वयोवृद्ध क्रान्तिकारी डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त के संस्मरणों में भी मिलता है।

अंग्रेजों और उनके साम्राज्यवादी तन्त्र के विरोध में घृणा और द्वेष के भाव यशपाल के मन में बचपन से ही अंकुरित हो गए थे। वे अभी चार या पांच वर्ष की अवस्था में थे, तब उनकी माता इन्हें साथ लेकर संयुक्त प्रांत के किसी कस्बे में अपने पारिवारिक सम्बन्धी से मिलने के लिए गई। उनके सम्बन्धी कपास ओटने के कारखाने के मैनेजर थे। उनका यह कारखाना रेलवे स्टेशन के निकट था। स्टेशन के समीप ही रेलवे विभाग में काम करने वाले अंग्रेजो के दो चार बंगले थे। इनमें से एक बंगले में मुर्गियां पाल रखी थीं। प्रायः वे

मुर्गियां बंगले से बाहर सड़क पर घूमती रहती थीं । यशपाल भी बालसुलभ चपलता से सड़क पर गुज़रते हुए उन मुर्गियों के साथ छेड़खानी कर बैठे । उनकी इस हरकत पर मुर्गियों की मालकिन अंग्रेज-मेम साहिबा ने उन्हें फटकार दिया । उतना ही नहीं, उन्हें 'गधा' या 'उल्लू' जैसी गाली देकर मारने की धमकी दी । यशपाल यह सब कुछ सहन नहीं कर सके । इसका प्रत्युत्तर देकर वे कारखाने में जा छिपे । यशपाल की इस शरारत की शिकायत कारखाने के मैनेजर को की गई । वे इस बात से भयभीत हो गए कि कहीं अंग्रेज़ हमारा कारखाना न बंद करवा दें । उन्होंने यह बात यशपाल की मां को भी बता दी । मां ने बालक यशपाल को कठोर दण्ड दिया जिसके परिणाम-स्वरूप उनके मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा, द्वेष की भावना अंकुरित हो गई । इस भावना से उद्वेलित होकर उन्होंने अंग्रेजों से लोहा लेने की ठान ली ।

गुरुकुल कांगड़ी की शिक्षा-दीक्षा एवं वातावरण ने यशपाल में विद्यमान क्रान्ति के अंकुरों को पल्लवित एवं विकसित होने का अवसर प्रदान किया। उनकी माता ने उन्हें सात-आठ वर्ष की अवस्था में आर्यधर्म का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बना देने की आशा से गुरुकुल कांगड़ी में प्रविष्ट करा दिया था । गुरुकुल में उस समय अंग्रेजों तथा उनके शासनतन्त्र का विरोध करने वाली भावनाएं पनप रहीं थीं । वहां के विद्यार्थियों को आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास और देश भक्ति का पाठ पढ़ाया जा रहा था । वहां भारत के प्राचीन गौरव को दुहराया जाता था । अतीत के इस वैभवशाली गौरव को फिर से पा लेने के लिए विद्यार्थियों को सर्वतो भावेन तैयार किया जाता था । आचार्य रामदेव जी ने आर्य सभ्यता का इतिहास पढ़ा कर विद्यार्थी यशपाल को इंग्लैण्ड तक दिग्विजय कर लेने के लिए अश्वमेध यज्ञ का सेनानी बना दिया था। गु कुल में दी जाने वाली शिक्षा और आर्य समाज की प्रगतिवादी विचारधारा ने यशपाल के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को संगठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

दैवयोग से यशपाल गुरुकुल में संग्रहणी नामक रोग से ग्रस्त हो गए। गुरुकुल के अधिकारियों के द्वारा उपचारार्थ अनेक प्रयत्न किए गए परन्तु रोग असाध्य बन गया। विवश होकर माता उन्हें लाहौर ले गईं। वहां यशपाल को डी0ए0 वी0 स्कूल में दाखिल करा दिया गया । उस समय वे 14 वर्ष के थे। लाहौर में उन दिनों रौलट एक्ट विरोधी आन्दोलन चल रहा था। प्रसिद्ध राजनैतिक नेता भाई परमानन्द, बलराज और बालमुकन्द आदि की गिरफ्तारियां हो चुकी थीं। सर्वत्र अंग्रेजों का आतंक छाया हुआ था। गुरुकुल से आये हुए यशपाल का ऐसे वातावरण में दम घुटने लगा। सन् 1919 ई0 में आन्दोलन के स्थगित हो जाने पर वे फिरोज़पुर छावनी चले गए। वहां वे आर्यसमाज मन्दिर में जाने लगे। मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद वे कांग्रेस दल के स्वयं सेवक बन गए। जन सेवा और प्रचार कार्य में यशपाल गुरुकुल से दीक्षित हो आए थे। यहां उन्हें कार्य-क्षेत्र मिल गया। वे उत्साहपूर्वक समाजकार्य में भाग लेने लगे। कुछ दिन बाद मैट्रिक का परिणाम आ गया। यशपाल मैट्रिक में गौरवपूर्ण रूप से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।

मां उन्हें किसी सरकारी कालेज में पढ़ा कर वकील बनाना चाहती थी परन्तु यशपाल मां की बात न मान कर नैशनल कालेज लाहौर में प्रविष्ट हो गए। वहां उनका परिचय भगत सिंह सुख देव, और भगवती चरण आदि से हुआ। इनके सम्पर्क में आकर यशपाल में क्रान्ति की भावना तेजी से प्रज्वलित होने लगी । उनका हृदय देशभक्ति से धधकने लगा। पण्डित जय चन्द्र विद्यालंकार से यशपाल को भारतीय इतिहास और राजनीतिक शास्त्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक उदयशंकर भट्ट से उन्हें लेखन-कार्य में प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। राष्ट्रप्रेम से ओत प्रोत अध्यापकों के दिग्दर्शन में यशपाल प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लगे। कालेज जीवन में इन्होंने क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ डाला, जिसका प्रभाव यह पड़ा कि यशपाल स्वयं क्रान्ति के ज्वलन्त उदाहरण बन गए। अपने क्रान्तिकारी साथियों से इनका विचार विमर्श निरन्तर चलता रहा। उन्होंने जिन क्रान्ति-

कारियों की जीवनियों और विभिन्न देशों में हो रही क्रान्ति के इतिहास को पढ़ा, उनमें उल्लेखनीय पुस्तकें निम्नलिखित हैं– डेनब्रीन की 'माई फाइट फार आइरिश फ्रीडम', मैजिनी और गेरी वाल्डी की जीवनियां, फ्रांसीसी क्रान्ति का इतिहास, वाल्टेयर और रूसो के रूढ़िवाद विरोधी क्रान्तिकारी विचार' रूसी क्रान्तिकारियों की जीवनियां, 'क्रोपाटकिन' आदि । इसके साथ साथ भारत में सत्याग्रह से भिन्न देश की स्वतन्त्रता के लिए किये गए प्रयत्नों का परिचय देने वाली पुस्तकें जिनमें सान्याल दादा की 'बन जीवन' और ''रौलैट कमेटी की रिपोर्ट' तथा 'क्रान्ति यज्ञ के पुरोधा' प्रमुख हैं।

लाहौर के उबलते हुए अंग्रेज़ विरोधी वातावरण में यशपाल ने एक दिन भगत सिंह के सामने अपना जीवन देश के लिए अर्पित करने की प्रतिज्ञा कर ली। यशपाल उसी दिन से सशस्त्र क्रान्तिकारियों के दल के सदस्य बन गए। उस समय 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र दल' और 'नौजवान भारत सभा' अंग्रेजों के विरोध में गुप्तरूप से कार्य कर रहे थे। महात्मा गांधी ने सन् 1921 ई0 में चौरी चौरा काण्ड के कारण 'असहयोग आन्दोलन' वापिस ले लिया था। महात्मा गांधी से देश के नवयुवकों को बहुत अधिक आशाएं थीं परन्तु इस आन्दोलन की समाप्ति से वे निराश हो गए। प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उनके हृदय में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रज्वलित अग्नि और अधिक धधक उठी । स्वयं यशपाल ने अपनी पुस्तक 'सिंहावलोकन' में सशस्त्र क्रान्ति के विस्फोट के कारणों को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'क्रान्तिकारियों का स्वयं गांधीवादी स्वराज्य आन्दोलन की सार्थकता में ही अविश्वास था। गांधीवाद तथा कांग्रेसी आन्दोलन में अविश्वास ही क्रान्तिकारियों को सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा की ओर ले जा रहा था ।' इस क्रान्ति के कारणों की व्याख्या करते हुए उन्होंने आगे लिखा है, 'राष्ट्रीय अपमान और भूख से सिसकते देश की जनता की निराशा, कातर आंखें और उनका करुण क्रन्दन ही देश के उग्र स्वभाव नवयुवकों को आवेश में उन्मत्त बना कर प्राणों की बाजी लगा देने के लिए विवश करा देता था ।' उनमें राष्ट्रीय अपमान की अनुभूति अन्य युवकों से अधिक होती थी । यही कारण थे जिन से वे युवक संगठित हो गए थे और उनकी समस्त गतिविधियां तीव्रता को प्राप्त हो गई थीं ।

जिस समय साइमन कमीशन लाहौर में आया तो उसका विरोध करने के लिए एक समिति बनाई गई जिसमें विरोध प्रदर्शन करते हुए युवकों के द्वारा कमीशन के सदस्यों का बम से स्वागत करना उल्लेखनीय था। उस समय इस सभा की पुकार थी कि अंग्रेज़ सरकार को हमारे भाग्यनिर्णय का अधिकार नहीं है। वे कमीशन के बहिष्कार का नेतृत्व कर रहे थे। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए कांग्रेसी नेता भी उसमें सम्मिलित हो गए थे । इस प्रदर्शन में लाला लाजपतराय पर भीषण लाठी प्रहार हुआ था । इससे उनके शरीर पर अधिक चोट लगी थी, जिसके परिणामस्वरूप 17 नवम्बर, 1928 ई0 को भारत उनके नेतृत्व से विहीन हो गया था। नौजवान सभा के लिए अंग्रेज़ अधिकारियों की यह दमन नीति असहनीय थी। उन्होंने लाला जी पर लाठी बरसाने वाले डी0 एस0 पी0 साण्डर्स और पुलिस के उच्च अधिकारी स्काट के वध की योजना बना ली। वे लाला जी पर किये गए प्रहार को राष्ट्रीय अपमान समझते थे। इस अपमान का बदला इन नौजवानों ने दिसम्बर, 1928 ई0 में साण्डर्स का वध करके लिया। सन् 1928 ई0 के मार्च में भगत सिंह ने दिल्ली की असैम्बली में बम फैंका तो इससे शासकवर्ग में खलबली मच गई। वे नौजवान सभा की गतिविधियों से भयाक्रान्त हो गए। अंग्रेज़ अधिकारियों ने इन पर कड़ी निगरानी रखनी शुरू कर दी। इनके गुप्त अड्डों पर छापे पड़ने लगे। अप्रैल में लाहौर में एक बम फैक्टरी पकड़ी गई जिसमें बम बनाने का कार्य यशपाल और उनके सहयोगी करते थे। फलतः यशपाल और उनके गिरोह के सदस्य फरार हो गए। यशपाल कांगड़ा पहुंचे वहां पर किसी वकील के द्वारा उन्हें किसी बड़े नगर में छिपे रह कर क्रान्ति करने की सलाह दी गई। यशपाल पुनः लाहौर लौट आए । यहां आने पर उनकी गतिविधि और तेज़ हो गई। पुलिस उनका पीछा करने लगी। यहां अपने कार्य में विघ्न जान कर भगवती चरण की सलाह पर यशपाल ने बम बनाने का स्थान रोहतक बना लिया। यहां वे वैद्य लेखराम के यहां नौकरी करने लगे

और किसी गुप्त स्थान में बम बनाने का कार्य भी। बम बनाते समय जब इनके कपड़े तेजाब से जल जाते तो भी ये केवल लंगोट धारण कर बम बनाने में लगे रहते। कपड़ों के अभाव में इनका शरीर झुलस जाता और आकार विवर्ण होकर भिन्न रूप धारण कर लेता। देश पर अपने प्राणों को न्यौछावर करने का कार्य यशपाल ने दिसम्बर 1928 ई0 में किया जब इनके दल ने वायसराय लार्ड इरविन की गाड़ी को बम से उड़ा देने की योजना बनाई। इस योजना को कार्यान्वित करने का भार यशपाल ने अपने ऊपर लिया। मृत्यु की उपेक्षा करते हुए उन्होंने यह कार्य किया और फरार हो गए किन्तु उनका सम्पर्क 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना' से बराबर बना रहा। यशपाल ने भगवती चरण के साथ मिल कर इस सेना का घोषणा पत्र 'बम का दर्शन' नाम से छपवाया । इसे इसलिए प्रकाशित किया गया था कि इन नवयुवकों को समाजविरोधी तत्व तथा आतंकवादी कहकर बदनाम किया जाने लगा था और इनके पवित्र ध्येय को भी संदिग्ध माना जाने लगा था। अपने ध्येय को स्पष्ट करते हुए इन्होंनें घोषणापत्र में लिखा था –"क्रान्तिकारियों का विश्वास है कि जनता की मुक्ति केवल क्रान्ति द्वारा सम्भव है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार में सशस्त्र संघर्ष ही नहीं है। हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त करके श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना और विदेशी तथा देशी शोषण से जनता को मुक्त कर आत्म निर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है।" (सिंहावलोकन भाग, 2, पृ0145)।

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना में देश के कोने कोने से युवक सम्मिलित होने लग गए थे। सेना के विस्तार के साथ साथ सेना की नीतियों में भी मतभेद होने लगा था। आपसी फूट और वैमनस्य बढ़ने लगा था। फरवरी, सन् 1931 ई0 में इस सेना के कमाण्डर इन चीफ चन्द्रशेखर आज़ाद किसी के विश्वासघात से अंग्रेज सरकार की पुलिस के द्वारा इलाहाबाद के अलफ्रेड़ पार्क में घेर लिए गए थे। पुलिस के साथ संघर्ष करते हुए आज़ाद वहां शहीद हो गए थे। आज़ाद के बाद यशपाल को सेना का कमाण्डर बनाया गया। यशपाल के द्वारा इसका नेतृत्व संभाले अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि इलाहाबाद में उन्हें एक आयरिश महिला के घर पुलिस से लड़ते हुए पिस्तौल की गोलियां समाप्त हो जाने पर गिरफ्तार कर लिया गया था।

गिरफ्तारी के बाद सरकार द्वारा उन्हें अनेक प्रलोभन दिये गए परन्तु वज्रनिर्मित यशपाल अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए। सन् 1937 ई0 में अनेक प्रान्तों का शासन कांग्रेस के हाथों में आ गया। प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों ने राजनैतिक कैदियों को रिहा करने का निर्णय लिया। यशपाल उन दिनों नैनी सैंट्रल जेल में 14 साल के लिए बन्दी थे । उनके न चाहते हुए भी तत्कालीन जेल मन्त्री श्री रफी अहमद किदवई उन्हें 2, मार्च 1938 ई0 को बन्दी जीवन से मुक्त करा कर फिर नवीन क्रांति के लिए जनसमूह को जागृत कराने हेतु घर ले आए। यहां आकर यशपाल पत्रकारिता और साहित्य सर्जन के द्वारा क्रान्ति का पाञ्चजन्य ध्वनित करने लगे।

वैचारिक क्रान्ति के अग्रदूत –

सशस्त्र क्रांति के प्रखर योद्धा यशपाल देश की बदली हुई परिस्थितियों के कारण लेखनी को हथियार बना कर वैचारिक क्रान्ति के अग्रदूत बन गए । समाज के निर्माण में वैचारिक क्रान्ति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए प्रसिद्ध मज़दूर नेता जार्ज दिमित्रोव ने कहा था–"कविता, उपन्यास आदि कलाकृतियों के रूप में तुम हमें एक तेज हथियार दो जो संघर्ष में काम आ सके । अपनी कला से क्रान्तिकारी बनने में मदद करें"। इसी सन्दर्भ में पद्म सिंह शर्मा कमलेश के द्वारा यशपाल से पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर की ओर ध्यान दिलाना असंगत न होगा जिसमें उन्होंने कहा था–"मैं साहित्य को साधन के रूप में मानता हूं और मेरा ध्यान साहित्य द्वारा क्रांति की प्रगति और भूमिका तैयार करना ही रहता है। (मैं इनसे मिला, पृ0 101)" वस्तुतः

यशपाल ने साहित्य की कई विधाओं–उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि के माध्यम से अपनी रचनाओ की सार्थकता प्रकट कर दी है । उनकी अनेक रचनाओं में उनका क्रान्तिकारी व्यक्तित्व विभिन्न पात्रों के माध्यम से मुखरित हुआ है । 'दादा कामरेड़' में रमेश के रूप में उनका क्रान्तिकारी व्यक्तित्व देदीप्यमान हो उठा है, जहां वह अदालत में फांसी से पहले सबको ललकारते हुए कहता है–"हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है । यह समाज में निरन्तर होने वाली भयंकर हिंसा और डकैती है । इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि यशपाल जीवन और साहित्य दोनों में क्रान्ति की साधना करते रहे हैं । क्रान्ति-भावना तो उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी । यौवन में जहां वे सशस्त्र क्रान्ति के सशक्त योद्धा रहे वहां प्रौढ़ावस्था में भी क्रान्ति के प्रबल समर्थक एवं चिन्तक रहे है । अपनी प्रौढ़तम रचना 'झूठा सच (पृष्ठ 708)' में डा0 प्राण के माध्यम से कहते है–"गिल ! अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है । जनता सदा मूक भी नहीं रहती । देश का भविष्य नेताओं और मन्त्रियों की मुट्ठी में नहीं, देश की जनता के ही हाथ में है ।" आज के सन्दर्भ में यशपाल की ये पंक्तियां कितनी सटीक एवं व्यंग्यपूर्ण हैं। सचमुच यशपाल ने एक सच्चे क्रान्तिकारी की भांति अपनी तेजस्विनी विचारधारा से परम्परागत जीर्णशीर्ण रूढ़ियों को ध्वस्त करते हुए नये समाज और नये राष्ट्र-निर्माण का पथ प्रदर्शित किया है ।

–संस्कृत विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला-5

"यशपाल जी हम सब बहन भाइयों के परिवारों के लिए बहुत बड़ी रौनक थे । ···एक बार जब यशपाल जी देहरादून में हमारे घर 'झूठा सच' उपन्यास लिख रहे थे और कुछ दिनों के लिए उन्हें जालन्धर पुराने अखबार लेने के लिए जाना पड़ा तो हमारी छोटी लड़की अनुराधा को, जो उस समय डेढ़ वर्ष की थी, उनकी उदासी में 105 दर्जे बुखार हो गया । उनके लौटने पर बुखार न जाने कहां भाग गया ।"

—यशपाल जी की साली श्रीमती विमला खन्ना के श्री सत्येन्द्र शर्मा को लिखे पत्र से साभार।

यशपाल—कुछ पुरानी यादें

—देशराज डोगरा

जब भी किसी भाई को यह पता चलता है कि मेरा यशपाल जो से कुछ समय निकट का सम्पर्क रहा है तो वे उन के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछने लगते हैं—'यशपाल जी से आप का मेल कैसे हुआ ? उनके लिखने का क्या ढंग था ? वे क्या खाते पीते थे ? उन में क्या विशेष गुण थे जो इतने सफल लेखक बन सके ? उन का जन्म स्थान असल में था कहां ?' इत्यादि।

यशपाल जी से मेरा सम्पर्क विचित्र परिस्थितियों में हुआ। मैं उन दिनों बम्बई रहता था। मार्क्सवाद में रुचि के कारण मैंने उनके निबन्ध 'न्याय का संघर्ष', 'मार्क्सवाद', 'चक्कर क्लब' आदि पढ़े थे, परन्तु उन का उपन्यास 'मनुष्य के रूप' पढ़ने पर ऐसा लगा कि इस का लेखक काफी समय कांगड़ा रहा है अन्यथा बैजनाथ, कांगड़ा, धर्मशाला की गलियों और बाजारों का वर्णन, गांवों के मकानों की परछाइयों और ओबरियों का इतना गहरा ज्ञान और बावलियों पर कपड़े धोती नारियों और धारों पर ढोर चराती लड़कियों की जानकारी कैसे हो सकती थी! परन्तु यह जिज्ञासा अधिक दिन तक न बनी रही क्योंकि इन के क्रान्तिकारी जीवन के संस्मरण सिंहावलोकन-भाग 1,2 कहीं से पढ़ने को मिल गए। अभी यह पता ही चला था कि यशपाल वंश-परम्परा से, कांगड़ा के हैं कि इन से अकस्मात् भेंट का सुअवसर भी मिल गया। उन्हीं दिनों यशपाल जी एक लेखक समारोह में बम्बई आए। हिन्दी ज्ञान-मन्दिर की ओर से इन के भाषण का आयोजन था। वहीं इन से मिला और यहां से हुआ हमारी मित्रता का सूत्रपात, जो आखिर तक बना रहा। उस के बाद, यह बात दिसम्बर 1953 की है, तीन चार वर्ष उन का बम्बई ठहरना या आना जाना होता रहा। फिर पत्र-व्यहार और हिमाचल में जब अक्टूबर, 1967 को वे आए तो पंद्रह दिन मैं उन के साथ ही रहा। बम्बई थे तो प्रायः रोज ही हम इकट्ठे हो जाते। चाहे प्रगतिवादी लेखकसंघ की बैठक हो, चाहे किसी मजदूर सम्मेलन का उद्घाटन, किसी विद्यालय में इन का भाषण या कोई अन्य साहित्यिक कार्यक्रम हो, तो मुझे प्रायः ही वे साथ रखते। उनका मेरे प्रति कुछ ऐसा स्नेह रहा कि यदि दो एक दिन न मिलूं तो वे टेलीफोन द्वारा पूछ-ताछ करते या कभी मेरे घर ही आ जाते।

यशपाल जी की जन्मभूमि के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियां हैं। मैंने भी जब पहले पहल इन के घरों की खोज करना चाहा तो कोई कहता फिरोजपुर के रहने वाले थे, कोई लखनऊ के। मुझे याद है चेतनानंद ने इन्हें पंजाबी समझ कर जब 'मनुष्य के रूप' पर आधारित फिल्म बनाना चाहा तो अन्य पंजाबी सम्वाद लेखकों ने उन्हें जा भड़काया—यशपाल पंजाबी कहां ? वे तो यू0 पी0 के रहने वाले हैं। एक बार मैंने शिमला में बात चलाई कि उन्हें हिमाचल सरकार द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए, तो कुछ हिन्दी के लेखक मित्र उलझ पड़े—यशपाल पहाड़ के कहां हैं ? वे तो अर्सा से लखनऊ में रहते हैं।' यह सच है कि उन का जन्म फिरोजपुर छावनी में हुआ था क्योंकि उस समय उन की माता प्रेम देवी वहां एक कन्या पाठशाला में अध्यापिका थी, यह भी सच है कि 1938 में जेल से रिहाई के बाद उन्हें लखनऊ ही डेरा डालना पड़ा क्योंकि उस समय की पंजाब सरकार ने इन की यहां आने के लिए मनाही कर रखी थी। परन्तु यह भी बिलकुल सत्य है कि यशपाल के दादा गोढू, और पिता हीरालाल भराईयां दे-टिक्कर और माता प्रेम देवी के माता पिता डिबरेड़ा, तहसील हमीरपुर जिला कांगड़ा के रहने वाले थे। इन के माता पिता बाद में नादौन के करीब भौंपल में आ बसे जहां आज भी इन की पैतृक सम्पत्ति भूमि के रूप में विद्यमान है। यह संयोग इस प्रकार था जिस तरह आज भी कांगड़ावासी अमृतसर, जालन्धर या देहली रहते हुए अपने पुत्र पुत्रियों को जन्म देते हैं। उन्होंने स्वयं, अपनी आत्म कथा 'सिंहावलोकन' में अपने को कांगड़ा का रहने वाला बताया है। इसी पुस्तक में किसी और प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि— मैंने अनेक पहाड़ों की सैर की है परन्तु कांगड़ा से अच्छा मुझे कोई स्थान नहीं लगा। एक बार रेडियो स्टेशन लखनऊ से 'कांगड़ा क्यों पीछे रहा' वार्ता उन्होंने प्रसारित की थी; बचपन से ही बाहिर रहने के कारण वे पहाड़ी इतनी स्वाभाविकता से नहीं बोल सकते थे परन्तु कभी कभी मेरी पत्नी के साथ मजाक में कई कई वाक्य एक साथ बोल उठते थे और इन के मुह पर वे सजते बहुत थे। मैंने भी एक बार हम दोनों की घनिष्टता का कारण टटोला तो वे बोले थे—क्योंकि हम दोनों कांगड़ा से आए हैं। इन्द्रपाल से दोस्ती भी इसी कारण हुई थी, जो उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है।

यशपाल जी बम्बई में थे तो व्ही शान्ताराम ने उन्हें अशोक कालीन समाज पर एक कहानी लिखने के लिए निमन्त्रण दिया था। कहानी का प्रारूप तैयार किया। जहां तक मुझे स्मरण है 5000/- रुपये पारिश्रमिक भी उन्हें तत्काल दे दिया था। इस कथानक की सामग्री बाद में उन्होंने 'अमिता' लिखने में प्रयोग की। उन्हीं दिनों एक सज्जन 'दादा कामरेड' और चेतनानंद 'मनुष्य के रूप' पर आधारित फिल्में बनाना चाहते थे। प्रायः ही ये लोग इनको घेरे रहते। कई बार चर्चा चलती, परन्तु फिर कुछ न होता। मैंने जब पूछा—यह फिल्मों का चक्कर है क्या? तो बोले—देसराज! तुम नहीं समझते। ये लोग चाहते हैं कि मैं इनके पोछे पीछे घूमूं। सच, है, आवश्यकता मुझे भी है। परन्तु मेरा काम लिखना है न-कि आगे पीछे फिरना, यह मेरे बस की बात नहीं। यही कारण था कि वे प्रेमचन्द जी की तरह फिल्म जगत में अधिक दिन न टिक सके।

यशपाल जी धारावाहिक रूप से लिखते रहते हों ऐसी बात कोई न थी। कभी घंटा दो घंटे बैठक के बाद ही उठ बैठते, कभी कभी सारी सारी रात लिखते रहते। वे लिख रहे हों और कोई आ जाए, तो झट लिखना छोड़ बातें करने लगते। मैं कई बार ऐसे ही समय पहुंच गया जब वे लिखने में व्यस्त थे। बेमौका पहुंचने की क्षमा मांगता तो टोक देते—कुछ बाधा नहीं। मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा में ही था। और जब कभी पूछा कि इस प्रकार आप के मस्तिष्क में आए विचार व्यर्थ नहीं जाते, तो कहते, "ऐसी असुविधा मैंने कभी महसूस नहीं की। जब दोबारा लिखने लगता हूं तो पिछले सूत्र ढूंढ लेता हूं।" क्या आप मानेंगे कि न वे नोटबुक रखते थे न नोट्स। सारी जीवन यात्रा स्मृति के सहारे लिखी। हां, पुरानी पत्रिकाओं, लेखों को किसी विशेष घटना के प्रमाण स्वरूप अवश्य देख लेते थे। पुराने साथियों से भी परामर्श करते थे। एक बार मैं उन्हें व्यस्त देख दरवाजे से लौट चला। उन्होंने शीशे से बाहर देख लिया और जोर से आवाज लगाई—क्यों, कहां चले ? जब मैंने अपना संकोच जाहिर किया, तो प्यार से बोले—मैं तुम्हारी तरह गुलाम थोड़ा ही हूं कि इतने बजे दफ्तर जाओ, इतने घन्टे काम करो। लिखना मेरे अपने हाथ की बात है। और फिर बोले—हो जाए एक एक कप जाए। उस के बाद शाम तक हम समुद्र के तट पर घूमते रहे।

एक बार शिव वर्मा जी ने उन से कहा—लिखने के लिए एकांत की आवश्यकता होती है। तुम सदा लोगों से घिरे रहते हो, यह क्यों ? बोले—इन्हीं लोगों से मुझे लिखने की प्रेरणा मिलती है। मैं तो भीड़ भड़का पसन्द करता हूं। शिव वर्मा जी हंस कर बोले—तो जा बैठो चौपाटी पर लिखने के लिए। उन्होंने मुस्करा कर उत्तर दिया—मैं भी यही सोच रहा हूं। हां, मैंने यह भी देखा है कि मैं घड़ी दो घड़ी कहीं बाहिर गया या उन के लिए चाय बनाने

लगा तो फिर झट मेज पर बै कर कुछ लिखने लगे गए। वे कई बार अपने निजी मित्रों को थोड़ी देर बैठने के लिए कह कर एक दो पृष्ठ लिख जाते।

लिखने का भी उनका, अपना ही एक ढंग था। कॉपी या पूरा शीट न लेकर वे छोटी छोटी स्लिपों पर लिखते थे, जिन पर काफी काट छांट होती थी। कई जगह डाट के निशान लगे रहते थे। पूछने पर वे बताते थे कि छोटी स्लिपों पर इसलिए लिखता हूं कि लिखे हुए में फेर बदल करने की आवश्यकता पर स्लिपें आसानी से निकाली जा सकें और उनके स्थान पर नई डाली जा सकें। डाट या निशानों का संकेत था कि इस सम्बन्ध में कहीं अन्यत्र भी कुछ लिखा है। कई बार लिखे हुए को दोबारा लिखने से बड़े टलते थे। किसी ने कोई सुझाव दिया और उन्हें न्यायसंगत लगा तो कहते—तुमने तो खाहमुखाह काम डाल दिया।

अपना लिखा मित्रों को सुनाने का भी शौक था। प्रायः ही जो कुछ लिखा होता वह मुझे सुनाते और फिर पूछते –"कैसी जमी?" जब कभी मैं कहती, 'मेरी राय से क्या होगा'। तो कहते—तुम्हारी राय भी तो एक पाठक की राय है। पुस्तकें क्या मैं अपने लिए लिखता हूं? मुझे याद है, एक बार वे बम्बई रेडियो के लिए एक टाक लिख रहे थे। मुझे सुनाई। मैंने कहा– आप जल्दी में घसीट गए। रेडियो सारी दुनिया सुनती है। प्रारूप मेज पर फैंका और झल्ला कर बोले—तो इस से अच्छी तू लिख दे। मेरे से नहीं होता दोबारा यह काम। परन्तु कई बार देखा कि उन्होंने मित्रों के सुझावों पर लेख के लेख या कहानी के कई प्रसंग बदल दिए।

नए लखकों की भी प्रोत्साहित करते। उन की लिखी कहानियां, लेख पढ़ते, सुझाव भी देते परन्तु उपदेश कभी नहीं। मुझे याद है जब मैंने अपनी एक दो कहानियां उन्हें पढ़ कर सुनाई तो सुझाव दिया इन्हें एक बार फिर लिखो, दोबारा लिखने से इम्प्रूवमेंट होगी। नवनीत के सम्पादक रतनलाल जोशी से एक बार कहने लगे—देसराज लिख अच्छा लेता है, पर कोशिश और मेहनत नहीं करता। जब उनसे सुना तो हैरान ही गया क्योंकि मेरे साथ ऐसा कभी न बोल सकते थे। एक बार मैंने एक लेख उस समय धर्मयुग के सम्पादक सत्यकाम विद्यालंकार को पने के लिए दिया, जो उन्होंने पढ़ कर लौटा दिया, 'लेख तो अच्छा है परन्तु हमारी पत्रिका सात्यिक नहीं।' जब उन्हें यह किस्सा सुनाया और उन्होंने लेख देखा तो हंस कर बोले, 'भाई! इतनी जल्दी क्यों घबरा गया। मेरे कई लेख और कहानियां तो सम्पादकों की ही भेंट हो गए। पर यह समझ में नहीं आया कि धर्मयग साहित्यिक पत्रिका नहीं तो और है क्या।'

एक दिन की बात है कि वे हमारे घर ही थे कि एक नये उदीयमान लेखक बैजनाथ वाले श्री मस्तराम कपूर (अब डाक्टर मस्तराम कपूर और कई पुस्तकों के लेखक) भी आ पहुंचे। यशपाल उन दिनों लखनऊ वापस लौट रहे थे। कपूर जी ने अनुरोध किया—'आप बम्बई रहकर हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिये।' हंस कर बोले-'बम्बई में मेरी आवश्यकता ऐसे ही है जैसे कि किसी मजदूर की कारखाने में, या कलाकार की फिल्म में। यदि बम्बई वालों के मनोरंजन का सामान जुटा सकूं तो ठीक, अन्यथा यशपाल को कौन जानता है! भाई साहिब, मेरा काम लिखना है नेता बनना नहीं, न ही उपदेश देना। मैं सभी लेखकों से यही उमीद करता हूं कि वे अपनी दिशा आप निर्धारित करें। मैंने स्वयं भी किसी की उंगली कभी नहीं पकड़ी।' साहित्य में उन का अपना अलग स्थान था। वे किसी की घिसी-पिटी लकीर पर न चले। एक बार जब मैंने उन से कहा–आप को तो सभी कम्युनिस्ट लेखक कहते हैं। तो कहने लगे–'ठीक है, मुझे सदा निर्धन और दलित वर्ग से हमदर्दी रही है, परन्तु इन प्रगतिशील लेखकों ने जितना मुझे कोसा है, और किसी ने नहीं। सच तो यह है कि मैं वाद-विवाद के चक्कर में उलझना नहीं चाहता। जो उचित मानता हूं, स्वतन्त्र रूप से लिख देता हूं।

लिखने के साथ साथ उन्हें पढ़ने का भी बड़ा शौक था। प्रायः ही उन के बिस्तर पर एक दो अंग्रेजी उपन्यास या हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें पड़ी रहतीं। कहते थे—हिन्दी की पुस्तकें तो अन्य लेखकों से भेंट स्वरूप मिल जाती हैं, अलबत्ता अंग्रेज़ी की खरीदनी पड़ती हैं। वे बताते थे कि जेल-जीवन में उन्होंने बंगला, फ्रेंच इटालियन जैसी भाषायें सीखीं और इन भाषाओं में प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों को मूलरूप में पढ़ा। उन पर फ्रैंच लेखक वालटेयर का काफी प्रभाव पड़ा। कई बार पुस्तक को थोड़ी ही पढ़ कर छोड़ देते, पूछने पर बताते, 'समझ गया, लेखक क्या कहना चाहता है। व्यर्थ में समय बर्बाद करने का क्या लाभ!' एक बार कहीं पड़ी पुस्तक के तीन वाक्य पढ़ कर ही झुझला उठे, कहने लगे--'भाषा पर इस लेखक ने अच्छे लट्ठ चलाये हैं।' परन्तु रोचक और साहित्यिक ग्रंथ होने पर कई रातें नींद भी हराम कर देतीं। असल में उन्हें न ही तो शब्दजाल पसंद थे, न ही विचारों का आडम्बर। वे सीधे और संक्षिप्त लेखन में ही विश्वास रखते थे। लेखक के विचार में ईमानदारी को वे सब से बड़ा गुण समझते थे। यही कारण है कि शुरु शुरु में उन्हें बड़ी परेशानी उठानी पड़ी, कत्ल तक की धमकियां दी गईं। यहां तक की जैनेन्द्र सरीखे बरिष्ठ लेखकों ने भी 'रामराज की कथा' और 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' आदि का नाम सुन कर उन का खुल कर प्रतिवाद करना चाहा।

यशपाल जी लिखने से पहले किसी कहानी अथवा उपन्यास की रूपरेखा मन में बना लेते थे। उनका यह कार्यक्रम गाड़ी में हों, मोटर में, अथवा सिनेमा में हों, चला ही रहता था। कई बार देखा गया कि आप उन से बात कर रहे हों और उन का ध्यान कहीं और। जब उन का कहते कहते ध्यान आकर्षित करते तो उत्तर देते–सुन तो रहा हूं तुम्हारी बातें। इसी प्रकार चलते चलते या उठते बैठते वे कई कहानियों, उपन्यासों के कथानक घड़ लेते थे। अपनी कहानियों, उपन्यासों का स्रोत भी वे प्रायः प्रतिदिन घटती घटनाओं में ही पाते थे। कभी समाचारपत्र में छपी सुर्खी, कभी रेडियो पर सुनी बात और कई बार चलते फिरते चेहरों में अपने पात्र ढूंढ लेते थे। कई पुरानी कहानियों के प्रेरणा-स्रोत उन्हें याद थे और उपन्यासों में वर्णित पात्रों को जीवन में आये लोगों में देखते थे।

वे कहते थे, 'क्रांतिकारी गतिविधियों में व्यस्त रहने के कारण मैं यौवन के आरम्भ में अधिक न लिख पाया। इसलिये मेरी लेखन-प्रक्रिया कुछ देर से आरम्भ हुई,' परन्तु एक बार लिखने में जो जुटे तो फिर रुके नहीं। आंखों में मोतियाबिंद उतर आया परन्तु फिर भी उन का लिखना जारी रहा। मैंने एक बार उन्हें सुझाया कि वे आराम करें। क्यों अपने पर अन्याय कर रहे हैं, तो बोले-'मुझे गति से अनुराग है (I have attachment to the speed)'। उन की दोनों आंखों का आपरेशन हुआ था।

भाषण देने से वे कतराते रहते थे। इस का विशेष कारण था—गले की खराबी। उन का कहना था कि जोर से और लम्बे भाषण देने में उन्हें कठिनाई महसूस होती है। उन्होंने अपने गले का भी रूस में आपरेशन कराया था। कुछ आवाज़ सुधरी थी।

जिस प्रकार वे लिखने में ईमानदारी से काम लेते थे उस प्रकार भाषणों में भी। एक बार बम्बई फ़ोबर्स गुजराती हाल में उन्होंने हिमाचली भाइयों को सम्बोधित करते हुए कहा—लगता है जमीन गोल है। हट फिर कर मैं फिर, अपने ही भाइयों के बीच आ पहुंचा हूं। मैं राजनीतिज्ञ नहीं, एक साहित्यकार हूं। सलाह-मशवरा देना मेरा काम नहीं। मैं अधिक आप से क्या कहूं। मुझे मंच पर खड़ा करने की बजाये अपने बीच बैठा कर बात करते तो बेहतर होता। इसी प्रकार एक दिन भूला भाई देसाई हाल में के-के हैब्बर की चित्रकला प्रदर्शनी का उद्घाटन करते समय अध्यक्ष पद से उन्होंने केवल पांच वाक्य बोले। डा० मुल्कराज आनन्द ने अपने एक

घंटे के भाषण के बाद जब दोबारा उनसे फ़िर बोलने का आग्रह किया तो फिर एक मिनट में यह कह कर कि डा0 आनन्द ने इतने विस्तृत और रोचक ढंग से हैब्बर साहिब की चित्रकला पर रोशनी डाली है कि मुझे इस सम्बन्ध में अधिक कुछ जोड़ना नहीं, बैठ गये । मुझे भी निराशा हुई । जब लौटते हुए ट्रेन में मैंने कारण पूछा तो फ़रमाया—सुन, सच तो यह था कि मैं हैब्बर साहिब की चित्रकला को भली प्रकार समझ न पाया था । न करने पर भी उन्होंने सभापति बना दिया फिर भारतीय भाइयों में बैठ कर अंग्रेजी में भाषण मुझे कुछ अधिक जंचते नहीं । परन्तु मजदूर सभाओं में या साहित्यिक समारोहों में सुनने वालों की रुचि देख कर उन्हें घंटा घंटा भर भी बोलते सुना है । जैसे अपनी पुस्तकों-निबंधों और कहानियों आदि में अपने पक्ष को सिद्ध करने में वे तर्क से काम लेते थे इसी प्रकार बोलते समय भी ऐसे जान पड़ता था कि एक चतुर वकील अपना केस लड़ रहा है ।

वे जिस प्रकार लिखने पढ़ने में प्रगतिशील विचारों के थे इसी प्रकार खान-पान में भी उन्होंने आधुनिक ढंग अपनाया था । कई, अन्य हिन्दी लेखकों के समान वे कुर्ता पाजामा, धोती, जैकेट, शेरवानी, शाल आदि न पहन कर साधारण लोगों के समान सर्दियों में कोट-पतलून-टाई और गर्मियों में बुश-शर्ट पतलून आदि पहनने के आदी थे । पांवों में चप्पल की बजाये बूट होता था । कई बार यह सुझाव मिलने पर कि धोती कुर्ता पहनने से उनका लेखक रूप अधिक उभरेगा, कहते—मैं लेखक हूं ही, चोला बदलने से क्या होगा । उन्हें खाहमुखाह का आडम्बर या दिखावा बिल्कुल पसंद न था—

खाने पीने में भी वे सादा थे । दाल-सब्जी ढंग से बनी हो तो बड़े रुचिपूर्वक खाते थे । मिर्च-मसाले भी उन्हें पसंद थे । उन्हें पंजाबी और दक्षिणी खाने दोनों पसंद थे परन्तु कहते थे कि लन्दन में ए-बी-सी होटलों के खाने उन्हें सब से नीरस लगे । चाय पीने का उनका विशेष ढंग था । ढंग से चाये पीने के लिये हमें प्रायः एकांत के होटल ढूंढने पड़ते जहां घड़ी भर बैठ कर गप्प-बाजी भी हो सके । चाये में दूध बहुत कम डलवाते थे, न भी हो तो भी चलता था । सिग्रेट भी खूब पीते थे । बम्बई में रहते हुए चार-मीनार ही पीते थे, विदेश में जाने पर 'कैमल' या 'चैस्टरफील्ड', आदि । उन का कहना था—अधिक कड़वा सिग्रेट मुझे अधिक तृप्ति देता है ।

यशपाल जी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी, अनेक लोगों की अनेक धारणायें रही हैं । इस सम्बन्ध में तीन प्रसिद्ध लेखकों की उन के प्रति राय इस प्रकार थीं—

देवेन्द्र सत्यार्थी—शरीर लम्बं तड़ंग है । उन्हें देखकर यह आशंका होती है कि किसी भी समय दलील की बजाये थप्पड़ से काम ले सकते हैं ।

श्री कृष्ण दास—प्रगति के जागरूक प्रहरी यशपाल के चेहरे पर गरीबी, दृढ़ता, अस्वस्थता और संघर्षशीलता के कारण जो गहरी रेखायें पड़ गई हैं, सम्भवतः अमिट हैं ।

उपेन्द्रनाथ अश्क—यशपाल का रंग सांवला है और कद मंझला । देखने में जैसे कोई बिगड़ा हुआ इसाई अफसर ।

उनके बारे में आम सुनने में आता है कि वे 'स्नाब' थे, उनका व्यवहार रूखा और अफसराना था । वे साधारण लोगों से बात कर के राजी न थे, परन्तु ये सारी बातें वही लोग करते थे जो उन्हें सम्मेलनों, समारोहों में दूर से देखते थे । असल में वे स्वभाव से संकोचशील थे और कम बोलते थे । क्रांतिकारी जीवन में अधिक यातनाएं सहने के कारण इनका असर उनके चेहरे और शरीर पर पड़ा था परन्तु उन से सामीप्य होने पर उन का दूसरा ही रूप नज़र आता था । एक बार आत्मीयता होने पर पता चलता था कि वे मित्रों की तलाश में ही रहते थे । उन के साथ हंसी-मज़ाक, चहल-पहल, और गप्प-बाजी उन्हें बहुत पसंद थी । जो चेहरा दूर से रूखा लगता था वह सौम्यता और सहृदयता में बदल जाता था । एक बार जो उन के समीप गया, उन का हो कर रह गया ।

क्रांतिकारी आन्दोलन में यशपाल जी ने विशेष भूमिका निभाई । बड़ी कठिन यातनायें सहीं । जान जोखिम में डाल कर वाईसराय इर्विन की गाड़ी उड़ाई, महीनों नौकर बनकर बम तैयार किये । चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत के बाद दल का नेतृत्व सम्भाला । सन् 1932 में पकड़े जाने पर आजीवन कारावास मिला । इन की गणना उन चार पांच महायुद्ध क्रांतिकारियों में की जाती हैं जिन के प्रयत्नों से अंग्रेजी शासन चरमरा गया था ।

लेखक बने तो भी कोई जवाब नहीं, प्रेमचन्द परवर्ती कथाकारों में अग्रणी रहे । वे पचास के करीब पुस्तकों के स्रष्टा थे जिन में 'झूठा सच' जैसे विशाल ग्रंथ, जिस की गणना विश्व के दस महान उपन्यासों में से एक से और एक की तुलना टालस्टाय के युद्ध और शान्ति से की जाती है । ('मेरी तेरी उसकी बात' पर 1976 में साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ था) ।

यशपाल जी का स्वास्थ्य काफी समय से बिगड़ रहा था, सन् 63-64 से ही उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी शिकायतों की खबरें आने लगी थी । कभी लिखते—कमज़ोरी बढ़ गई है । कभी लिखते—चल फिर नहीं सकता । 1955-56 में उन्हें हृष्ट पुष्ट देख आया था । 1967 अक्टूबर में वे एक दम कमजोर हो गये थे । हिमाचल यात्रा में भी श्वास का प्रकोप बना रहा । मनाली की ऊंचाई बरदाश्त न हुई, धर्मशाला रात न टिक सके । मणिकर्ण गर्म चश्मों तक न पहुंच पाये । सतप्रकाश महाजन ने पठानकोट रोटी कही तो कोठे के ऊपर न पहुंच सके । 1976 तक पहुंचते पहुंचते हृदय रोग ने आ दबोचा । जेल की यातनायें, बम के धूएं का असर, लेखक जीवन का कठिन परिश्रम —और एक दिन 26 दिसम्बर, 1976 को रेडियो पर सुना—वे नहीं रहे । यह उनका जन्म का महीना मरन मास भी बन गया ।

आज एक वर्ष बीत गया, कई और बीत जायेंगे । अब केवल उन की पुरानी यादें ही शेष हैं ।

—खण्ड विकास अधिकारी,
संगड़ाह् विकास खण्ड,
सिरमौर, हि0 प्र0 ।

क्राँति और कलम के धनी–यशपाल

—प्रेम पखरोलवी

यह सर्वमान्य है कि 'व्यक्तित्व' 'व्यक्तियों' का ही होता है । फिर, वे कौन से जीवनमूल्य हैं जिन्हें अपना कर व्यक्तिविशेष किसी भीड़ या समुदाय में उससे कुछ अलग, अनूठा या असाधारण माना जाता है? बा उसके शरीर की गठन, उसकी लंबाई चौड़ाई की नहीं है, वरन्, उसके दृष्टिकोण, विचारधारा, अनुभूति, ज्ञा कोष, उसके आम आहार विहार एवं चरित्र की है, व्यक्तित्व में इन सब गुणों के अलावा एक और गुण भ होता है—व्यक्ति के स्वाभिमान का। यह स्वाभिमान प्रथमतः आत्मसम्मान का प्रतीक होता है पर विकसि होने पर जाति या राष्ट्र के मान-सम्मान का भी पर्याय बन जाता है ।

स्वर्गीय यशपाल की जीवनी इस बात का ज्वलंत उदाहरण पेश करती है। हिमाचल प्रदेश की उर्वरा धरती अ और फल उपजाने वाली रही है । यह 'वीर प्रसू' भी मानी जाती है । आज से 74 वर्ष पहले, 3 दिसम्बर के दि लाला हीरालाल के यहां एक बालक का जन्म हुआ । जातक की माता थी श्रीमती प्रेम देवी, जो एक औ पहाड़ी महिला से इन मायनों में विशिष्ट थी कि वह कुछ पढ़ी लिखी थी । यह परिवार हमीरपुर-नाद राजमार्ग पर स्थित एक गांव 'भोंपल' में आबाद था । हीरा लाल के पिता श्री गोढ़ू राम जी मूलतः 'टिक्क भराइयां दा,' जिला हमीरपुर के रहने वाले थे, जो उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशाब्द में अर्थसंकट से पीड़ि होकर विस्थापित हुए थे । मगर कृषि योग्य पर्याप्त भूमि न टिक्कर में सुलभ थी, न हीं 'भोंपल' में जहां कु खास कारोबार जम सके । बस येन-केन उपायेन निर्वाह भर होता रहा और समय गुजरता गया ।

यशपाल अभी तीन-चार वर्ष का हुआ होगा, जब हीरा लाल जी भोंपल छोड़ने पर विवश हो गये । कारण यह पहले तो पति-पत्नी ही थे, मगर अब सन्तान के लालन-पालन और भविष्य की भी फिक्र लग गई । मां प्रेमदेवी पर आर्यसमाज के उच्च उद्देश्यों का प्रभाव था और वह स्वयं भी प्रबुद्ध एवं जागरूक महिला थ अपनी सन्तान को सुयोग्य देखने की उनकी महत्वाकांक्षा स्वाभाविक ही थी । पंजाब के दूरवर्ती जिला फिरोज में एक निकट सम्बन्धी की सहायता से उन्हें आजीविका का प्रबन्ध जुटाने का सुझाव आया तो यह पूरा परि 'भोंपल' से उठ कर फिरोजपुर छावनी में जाकर बस गया । तब किसी ने नहीं सोचा होगा कि जिस बा को गोद में लेकर प्रेमदेवी अपनी तथा पुत्र की जन्मभूमि से इतनी दूर पंजाब में रहने को विवश थीं, आगे चलकर वही पुत्र देश का एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी और प्रतिष्ठित लेखक बनेगा ।

गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा--प्रबन्ध

पिता हीरालाल जी का कोई कामधन्धा पनप नहीं रहा था । गृहस्थी का तमाम बोझ माता प्रेम पर पड़ता । वह एक पाठशाला में अध्यापिका हो गई थी । यश जब पांच छः वर्ष का था, तब माता ने

और बालक को जन्म दिया, उनका नाम धर्मपाल पड़ा । प्रेमदेवी की यह उत्कट इच्छा थी कि संतान उच्च एवं उपयोगी शिक्षा प्राप्त करे । चुनांचे यशपाल को 'गुरुकुल कांगड़ी' में भरती करा दिया गया । यहां पर शिक्षा स्वामी दयानन्द जी के ऊंचे आदर्श को आधार मान कर दी जाती थी । अध्ययन के साथ साथ विद्यार्थी को कठिन नियंत्रण एवं अनुशासन में भी रहना पड़ता था । रोजमर्रा के छोटे मोटे काम—कपड़े धोना, जू बर्तन स्वयं मांजना, सूर्योदय से पूर्व उठना; ठण्डे जल से स्नान करना तथा नंगे पांव रहना, ये सब करने होते थे ।

किशोर यशपाल का मन इस संस्था के वातावरण में स्वामी दयानन्द के आदर्शों से भीग रहा था और वह दिनों दिन एक कर्त्तव्यनिष्ठ राष्ट्रसेवी बनता जा रहा था। विदेशी शासन के प्रति एक उग्र विरोध की भावना का जन्म जरूर मन में हो रहा था। एक बार यश ने अपने गुरु से यहां तक कह दिया था, 'अधिक दमन होने से क्रांति हो जायेगी'। हां, गुरुकुल में वह अक्सर बीमार ही रहता था। अतः सातवीं कक्षा के बाद उसे गुरुकुल छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। तब लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल में दाखिला दिलाया गया। उस समय यश 14 वर्ष का था। अब तक 'आनन्द मठ' तथा 'अन्दमान की गूंज' आदि 'क्रांतिकारी पुस्तकें' पढ़ छोड़ी थीं और उसके विचारों पर उनका गहन प्रभाव पड़ चुका था। मां तब भी फिरोज पुर छावनी की प्रायमरी आर्य कन्या पाठशाला में अध्यापन कार्य करतीं थीं। इन्हीं दिनों यशपाल ने देवकी नंदन खत्री, कवीन्द्र रवीन्द्र, प्रेम चन्द और स्वामी दयानन्द की रचनाएं पढ़ीं। एक बार स्कूल के वार्षिक निरीक्षण पर इन्सपैक्टर आने वाले थे। यश ने उन्हें सुनाने हेतु एक सूक्ति लिखी थी–जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

इन्हीं दिनों वह राजनैतिक आन्दोलन में भाग ले रहा था। उधर मैट्रिक की परीक्षा सिर पर थी। मां की आज्ञा का पालन करने हेतु यश ने परीक्षा की तैयारी शुरू की। परीक्षा के उपरान्त परिणाम घोषित होने तक वह फिरोजपुर चला गया। वहां स्वयंसेवकों में शामिल होकर अवैतनिक कार्य करता रहा। कांग्रेस कार्यालय में प्रायः राजनैतिक व्याख्यान चला करते जिनमें उसका भरपूर योगदान रहता था। विवेकानन्द अरविन्द की पुस्तकें इन्हीं अवकाश के दिनों में पढ़ी गईं। गीता के साथ 'गीता रहस्य,' और फिर देश-दर्शन भी पढ़ा जिसके फलस्वरूप यश के भाषण काफी सारगर्भित और प्रभावोत्पादक बन पड़ते थे।

यश टोलियां-बना-कर गांव गांव घूमता और देहाती नर नारियों को अंग्रेजों द्वारा ढाये जा रहे अत्याचारों की करुणगाथा सुनाता । कभी पैदल, कभी बैलगाड़ी पर और अक्सर इक्के पर। एक दिन ऐसी ही यात्रा से लौटा तो मैट्रिक का परीक्षाफल आ चुका था । वह प्रथम श्रेणी में पास हुआ था और अपने विद्यालय में भी प्रथम रहा था। जिला में विशिष्ट (distinction) स्थान आने के कारण वह छात्रवृत्ति का अधिकारी था। इस विषय में "सिंहावलोकन (भाग–1) में वे कहते हैं – "उस समय हमारे परिवार की आर्थिक दशा काफी कमजोर चल रही थी। अतः आगे की शिक्षा पाने के लिये यह छात्रवृत्ति बहुत बड़ी चीज होती। तभी गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन की अपील की। एक वर्ष में 'स्वराज्य' का आश्वासन भी था। मैं वजीफ़े के लिये राष्ट्र पुकार की अवहेलना न कर सका। तमाम रिश्तेदारों और हित चिंतकों की **फटकार** सुनी। सहानुभति मिली तो सिर्फ मां से और उसे ही मेरी बगावत के फलस्वरूप ज्यादा जोखिम **उठानी** थी। उन्होंने कहा –'अच्छा काम करने जा रहे हो। हिम्मत है तो करो, मेरी चिन्ता मत करो।' आज, **मैं** जैसा, जो कुछ भी हूं उस पर मां का बहुत प्रभाव पड़ा है"।

यशपाल ने सरकारी कालिज में दाखिला न लेने की प्रतिज्ञा की। वे लिखते हैं –'सरकारी कालिज में पढ़ना नामन्जूर तो वकील बनने या बढ़िया नौकरी का स्वप्न भी खत्म। कारोबार में न रुचि न साधन। अखबार और पुस्तकें विशेषतया कहानी और उपन्यास पढ़ता था। वैसा लिख सकने की उमंग पैदा होती। यह विश्वास होता कि अखबार में काम करने वालों, पुस्तक लिखने वालों को कुछ तो मिलता ही होगा। वह नट या मदारी भी तो लोगों का दिल बहला कर जिन्दा रहते हैं। ....' अस्तु यशपाल शे पंजाब ला0 लाजपतराय द्वारा स्थापित नैशनल कालिज, लाहौर में पढ़ने चला गया। यहां संगति पाई शहीद साथियों, भगत सिंह, सुखदेव और भगवती चरण की। वे सब मित्र ब्रिटिश शासन के उग्र रूप में विरोधी थे। फिर जयचन्द्र विद्यालंकार जैसे गुरू मिले, जिन्होंने क्रांतिकारी भावना को और भी पुष्ट किया। एक दिन यशपाल और भगत सिंह दोनों रावी नदी में 'नाव क्रीड़ा' का अभ्यास करने गये तो यशपाल ने भगत सिंह से कहा – 'आज हमें अपना जीवन देश के लिये अर्पण करने की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये।' और भगत सिंह ने गम्भीरमुद्रा में अपना हाथ बढ़ा कर कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूं। इतिहास साक्षी है वह 'प्रतिज्ञा' वास्तव में कितनी बड़ी प्रतिज्ञा बन गई।

अस्तु, इन साथियों का आपसी निश्चय था कि विदेशी शासन से मुक्ति का संघर्ष जारी रखा जायेगा। यह संघर्ष पूर्ण बगावत का संघर्ष था। कांग्रेस का शांति पूर्ण संघर्ष उन्हें निजी आत्म-प्रवंचना लगती थी। क्रांतिकारियों का मार्ग वही था जिस पर उन से पहले पंजाब में 'गदर पार्टी' तथा बंगाल और देश के दूसरे प्रांतों में 'सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखने वाले युवक चले थे।

कालिज में यशपाल हिन्दी के अध्यापक उदय शंकर भट्ट के संसर्ग में आये जिन्होंने उसे कहानी लिखने के लिये उत्साहित किया। उनकी छिट फुट रचनायें 'भ्रमर प्रभा' तथा 'प्रताप' पत्रिकाओं में स्थान पाने लगी थी आप लिखते हैं, 'कालैज में मेरा लिखने का प्रयत्न जारी रहा। रचनायें जहां तहां पत्रों में प्रकाशित हो गई। पर उससे केवल अभिव्यक्ति का ही सन्तोष रहा। यों अपनी कल्पना के विरुद्ध पहली पगार लेखन से नहीं, अध्यापन से पायी थी। तब मुझे स्वयं पढ़ सकने के लिये 'टयूशन करके स्नातक हो जाने पर उसी संस्था में अध्यापन का काम मिल गया था।'

तब तक उनके दल के संगठन की एक स्पष्ट आकृति उभर आई थीं। हिन्दुस्तानी प्रजातन्त्र दल का एक पर्चा लाहौर में 'बलराज के हस्ताक्षर से प्रकाशित प्रसारित हो चुका था। फिर रूस के सम्बन्ध में कुछ साहित्य उन्हें प्राप्त हुआ। सन 1925 में गुप्त संगठन की रूप रेखा तैयार करने हेतु, नौजवान भारत सभा स्थापित की गई। उसके मुख्य स्तम्भ भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा आदि थे। संगठन का मुख्य उद्देश्य जनता में क्रांति की भावना जागृत करना था। यशपाल न लिखा है –"राष्ट्र की आजादी की हमारी कल्पना श्रेणी और वर्ण भेद रहित ऐसे समाज की थी जिस में बहुजन को आत्म निर्णय से जिन्दगी के भौतिक तथा मानसिक अवसरों की समान सुविधा और अपने श्रम का पूरा फल खाने का अधिकार और अवसर होगा। इस का नाम था हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना।

सन् 1926 ई0 तक इस संगठन का प्रचार प्रसार काफी दूर तक पहुंच चुका था। भगत सिंह दिल्ली और कानपुर में भी दूसरे क्रांतिकारियों से सम्पर्क बना चुका था। उधर यशपाल बेकारी का शिकार था और मां की

भी नौकरी छूट गई थी। पिता का देहान्त हो चुका था। अब बेकार यशपाल मां के पास लायलपुर पहुंचा। वह नैशनल कालेज का स्नातक था, फिर नौकरी कहां रखी पड़ी थी ?

ब्रिटिश शासन की गुलामी से निजात पाने हेतु गांधी जी के नेतृत्व में 'सत्याग्रह आन्दोलन' चल रहा था। काम क्रांतिकारी भी वही कर रहे थे। मगर उनके तौर तरीकों से विरोध और संघर्ष की ध्वनि निकलती थी। इतिहास में क्रांति का मार्ग 'परिवर्तन के लिये संघर्ष से जूझने का मार्ग' बताया गया है। मगर क्रांतिकारियों का चरम लक्ष्य केवल हिंसात्मक कार्यवाहियां करना नहीं था, यह तो प्रथम सोपान था सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आज़ादी प्राप्त करने का।

गांधी जी अंग्रेजी के फलते फूलते साम्राज्य का अन्त हृदय–परिवर्तन द्वारा करना चाहते थे जबकि क्रांतिकारियों का तरीका दूसरा था। आखिर यह शोषक और शोषित के बीच जिन्दगी और मौत का प्रश्न बन गया था। इसका फैसला तो हर दशा में करना ही था। हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना में सब प्रांतों के क्रांतिकारी शामिल हो चुके थे। अब सशस्त्र क्रांति को प्रज्वलित करने के लिये धन की आवश्यकता थी। घटनाएं तेज गति से घट रही थी। रोल्ट कानून के बाद 'साइमन कमीशन का बहिष्कार और फलस्वरूप लाला लाजपतराय पर घातक लाठी प्रहार'। 17 नवम्बर, 1928 को लाला जी की मृत्यु हो गई और 17 दिसम्बर को क्रांतिकारियों ने सांडर्स की हत्या द्वारा उनका बदला ले लिया। लाहौर में बमों के खोल तैयार होते और गुप्त रूपेण उनमें आगरा में मसाला भरा जाता था, परीक्षण झांसी में किया जाता था।

कुछ समय पश्चात असेम्बली हाल में बम विस्फोट और वायसराय की ट्रेन के नीचे विस्फोट का कार्यक्रम बना, पर बदल दिया गया। 18 अप्रैल, 1929 ई0 को भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली में बम फैंका, साथ ही घोषणापत्र भी फैंके। वे नारा लगा रहे थे – "इन्कलाब जिन्दाबाद, 'साम्राज्यवाद' मुर्दाबाद।" दोनों गिरफ्तार हो गए थे।

यशपाल ने लिखा है –"सन् 1928 के अन्त में भगत सिंह, सुखदेव तथा अन्य साथी पहले फरार हु, फिर गिरफ्तार। उसी क्रम में मुझे फरार होना पड़ा। ऐसी दशा में नित्य नाम बदलने की मजबूरी। ऐसी अवस्था में आदमी अपने नाम से अभिव्यक्ति और प्रकाशन की ललक कैसे पूरी कर सकता है ? वह ललक तब भी दृढ़ और सजीव रही। पर उस समय ज्यादा जरूरी काम था बम तथा पिस्तौल का आयोजन। सन् 1932 में गिरफ्तार हुआ था तथा चौदह वर्ष की जेल मिली ....।"

क्रान्ति की परिभाषा

यशपाल ने एक जगह कहा है कि "क्रांतिकारी शब्द से लोग एक ही तस्वीर बना पाते हैं, एक ऐसे व्यक्ति की, जो हमेशा किन्हीं हिंसक इरादों को पूरा करने के लिये भागा फिरता हो। 'क्रांति' शब्द से उनके मन में एक ही विचार उगता है कि पिस्तौल निकाली और घोड़ा दबा दिया। मगर तथ्य यह नहीं है। तो फिर हर प्रसिद्ध क्रांतिकारी के साथ ऐसी कहानी क्यों जुड़ी रहती है जिसे हिंसक मानना पड़ता है ? मैं कहूंगा, नहीं। वह हिंसक नहीं थी। जरा ध्यान दें उन पर्चों की इबारत पर जो भगतसिंह ने बम विस्फोट करने के साथ असेम्बली हाल में बांटें थे, स्पष्ट लिखा था – 'बहरों को सुनाने के लिये ऊंचे शब्द की जरूरत होती है,।"

Scanned with CamScanner

क्रांतिकारी निश्चय ही हिंसा के पुजारी नहीं थे। वे आत्मोत्सर्ग की शक्ति में विश्वास रखते थे, इस क्रांति के पीछे सिर्फ एक ही लक्ष्य नहीं था कि अंग्रेजों के साथ गोला बारूद की जंग जारी रखी जाती। वरन क्रांतिकारियों की मांग यह थी कि एक न्याय पूर्ण सामाजिक व्यवस्था हो, पूंजीवाद की समाप्ति हो, और एक वर्गविहीन समाज की रचना करके जनता को आम निर्णय की आज़ादी देकर मुक्त कराया जाये।

नारी शक्ति का सम्मान

साहित्य के क्षेत्र में नारी को केवल श्रद्धा या फिर नरक का द्वार बताने वाले बहुत से महानुभाव हो गुज़रे हैं। यशपाल रूढ़ियों और व्यवस्था के साथ कभी भी समझौता नहीं कर सके। वह नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व गढ़ने में रुचि रखते थे। अपने 'दिव्या' उपन्यास में उन्होंने दिव्या के जीवन के अनुभवों के व्याज से यह दर्शाने का यत्न किया है कि नारी अगर पुरुष पर निर्भर रहेगी तो उसका कभी कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व मुमकिन नहीं हो सकेगा, न ही वह आत्म निर्णय के मानवीय अधिकारों का कभी तकाज़ा कर सकेगी। दिव्या को शक्ति सम्पन्न महामात्य आचार्य रुद्रधीर और चीवरधारी भिक्षु प्रथुसेन का आश्रय स्वीकार नहीं क्योंकि वह उन हाथों का खिलौना बनना किंवा उनकी 'भोग्या' बनके रहना पसन्द नहीं करती। इसके विपरीत निर्धन दार्शनिक मारिश का साहचर्य उसने सहज स्वीकार लिया क्योंकि वहां उसे अपनी और दार्शनिक की समस्थिति, संगति, संतोष और अन्योन्याश्रय की दोस्ती का अवसर सुप्राप्य था। दिव्या पराश्रय और कृपा के वास्ते खिलौना किंवा दासी बनने को तैयार नहीं हो सकती।

कुछ ऐसी ही विशेषता 'मनुष्य के रूप' में चित्रित सोमा (पहाड़न) के व्यक्तित्व में भी विकसित होती प्रतीत होती है। यशपाल जी पुरुष और स्त्री के आपसी आकर्षण के विषय में भी खूब व्यावहारिक तथ्य का निरूपण करते हैं। उनका कहना है कि जिन वस्तुओं में आकर्षण नहीं रहता वे उपेक्षित रहती हैं। .... यदि पुरुष के जीवन–विकास में स्त्री का आकर्षण विनाशकारी होता, तो प्रकृति यह आकर्षण पैदा ही क्यों करती ?

स्वयं निजी जीवन में वह नारी की महत्ता एवं गरिमा को पूरी तरह स्वीकारते हैं। वह पिता से बढ़ कर मां प्रेम देवी का प्रभाव, भगवती चरण वोहरा से बढ़ कर उनकी सहधर्मिणी दुर्गा भाभी का प्रभाव अपने पर स्वीकारते हैं। यह उन्हीं भाभी के सुझाव और समर्थन का नतीजा था कि अपने दल की एक गुमनाम किंवा गुप्त कार्यकर्तृ प्रकाशवती से जेल में ही विवाह करने का जोखिम उठाया। और प्रकाशवती ने भी कन्धे से कन्धा भिड़ा कर न केवल पति सेवा की वरन् दल की गतिविधियों में प्राणपन से भाग लिया। उनकी इस निराली सहचरी के विषय में सोचते हुये प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक बालज़ाक की यह सूक्ति सहज स्मरण हो आती है कि नारी में प्रतिभा होनी चाहिये कि वह एक अच्छे पति का निर्माण कर सके।

दार्शनिक की सूझ

बहुत समय नहीं गुजरा कि उनकी आंख का आप्रेशन हुआ था। प्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर मिजाज-पुर्सी को गये। कमलेश्वर जी ने अपने संस्मरण में एक बहुत ही मर्मस्पर्शी बात का उल्लेख किया है। वह लिखते हैं— 'बातचीत के दौरान यशपाल कहने लगे– आंख से सिर्फ देखा जा सकता है, पर आंखों की कमी उसे खलती है जिसके पास दृष्टि नहीं होती .....। वह आंख जो सदियों पीछे और सदियों आगे नहीं देख सकती, वह लेखक की आंख हो ही नहीं सकती। पिछली सदियों की सच्चाइयां और अगली सदियों के स्वप्न ही हमारा वर्तमान होते हैं ....' "(द्रष्टव्य धर्मयुग 9 से 15 जनवरी–1977, पृ024)'।

यशपाल वास्तव में एक महान उपन्यासकार थे और उद्भट आधुनिक मार्क्सवादी चिंतक भी। उनकी षष्टिपूर्ति पर प्रयाग में आयोजित एक समारोह में सुप्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने उनके व्यक्तित्व के साथ साथ उनके 'कृतित्व' का मूल्यांकन करते हुए कहा था कि, 'जब यशपाल पीढ़ी के साहित्यकार सरस्वती की साधना में लगे थे, तब यशपाल किसी बन्द कमरे में बैठे बम बना रहे थे और जब कई वर्ष बाद यशपाल सरस्वती के मंदिर में पहुंचे तो सरस्वती का ध्यान सब से अधिक यशपाल पर ही गया।'

गत वर्ष साहित्य अकादमी ने उनके 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास को पुरस्कृत किया है। उनका भीमकाय उपन्यास 'झूठा सच' हिन्दी की एक उपलब्धि मानी जायेगी। विचारों से क्रांतिकारी एवं मार्क्सवादी होते हुए भी यशपाल जी ने अपनी रचनाओं में मानवीय सम्वेदना के प्रसून महकाए हैं। किसी समालोचक ने ठीक ही उन्हें 'क्रांति और कलम के मध्य महकता, दो रंगा गुलाब' कहा है। । ऐसा साहित्यकार कालजयी होता है, वह मर कर भी अपनी कृतियों में जीता है!

—राक सो होटल, दी माल, शिमला–1

यशपाल—कहानीकार के रूप में

—डा0 कृष्णा रैणा

यशपाल का स्थान हिन्दी के कहानीकारों में प्रमुख है । वे समाजवादी विचारधारा के कहानीकार हैं, जिसका मूल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है । इनका दृष्टिकोण प्रगतिशील रहा है । इन्होंने अपने पात्रों का चुनाव भी आर्थिक संघर्ष और वर्ग चेतना के धरातल से किया है । यशपाल ने युगजीवन और उसके संघर्षों को इस प्रकार चित्रित किया है कि उनके प्रत्येक उपन्यास में प्रतिक्रियावाद और प्रगतिशील पात्रों के बीच संघर्ष दिखाई देता है । यशपाल ने मनुष्य के परिवेश अर्थात् आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों को ही विचार परिवर्तन एवं जीवन-मूल्यों में परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण माना है, और साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, न्याय, नीति आदि को उस पर आश्रित बताया है ।[1] यशपाल पूर्णरूप से कला की उपयोगिता परखते हैं क्योंकि वे साहित्य को समाज के सन्दर्भ में देखने के पक्षपाती हैं। समाज में अन्धविश्वास, रूढ़ियां और आर्थिक शोषण इस की जड़ों को हिला रहा है अतः समय पर इनका सुधार आवश्यक है इसी कारण कई लेखक साहित्य को साधन बना कर मानव-कल्याण की कामना के लिये प्रयत्नशील हैं, जिन में यशपाल का नाम सर्वप्रमुख है।

यशपाल ने उपन्यास और कहानी दोनों साहित्यिक विधाओं में अपना योगदान दिया है । यहां मैं उनके कहानीकार रूप को ही लेना चाहूंगी। नवम्बर 1939 में यशपाल की कहानियों का पहला संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' प्रकाशित हुआ है इसके पश्चात् 'वो दुनिया (1941),' 'ज्ञानदान' (1943),' 'अभिशप्त' (1944), 'तर्क का तूफान' (1944), भस्मावृत्त चिंगारी, (1946), 'फूलो का कुर्त्ता' (1949), 'धर्मयुद्ध' (1950), 'उत्तराधिकारी' तथा 'चित्र का शीर्षक' (1951) संग्रह प्रकाशित हुए हैं । 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं' तथा 'उत्तमी की मां' क्रमशः 1954 और 1955 में प्रकाशित हुए हैं । यशपाल के कहानीकार की सर्वप्रथम विशेषता है, विषय वस्तु का विस्तार । प्रेमचन्द की भांति इन्हें जीवन के अनेकानेक पहलुओं की सूक्ष्म और साधारण पकड़ तथा पहचान है । एक ओर मिल मजदूर का सजीव चित्र है तो दूसरी ओर पहाड़ी जीवन की सुन्दर झांकियां तथा प्रकृति की रम्यता है ।[2] इनके मुख्य चरित्र सर्वसाधारण, यथार्थ और मानव-संघर्षों के प्रतीक हैं । इन्होंने इतिहास, पुराण, समाज और कल्याण जगत् से चरित्रों को लिया है परन्तु आर्थिक संघर्ष से जोड़ते गये । यशपाल के चरित्र-चित्रण में जैनेन्द्र, अज्ञेय की रचनाओं सरीखे एक भी आदर्श चरित्र नहीं हैं, यद्यपि उनके चरित्र प्रायः संघर्ष और विद्रोह के धरातल से निर्मित हुए हैं ।[3] इनकी समस्त प्रतिनिधि कहानियां लक्ष्यात्मक हैं । मुख्य लक्ष्य वर्ग-चेतना और आर्थिक संघर्ष है।

1. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल—डा0 पारस नाथ मिश्र ।
2. यशपाल के उपन्यास—पृष्ठ 144 सं0 1972, मूल्यांकन—डा0 सुदर्शन मल्होत्रा, पृ. 19 सं0 1973 ।
3. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास—डा0 लक्ष्मी नारायण, पृष्ठ 263, सं0 1967।

यशपाल की कई कहानियों को लेकर 'श्लील' और 'अश्लील' सम्बन्धी प्रश्न उठाये जाते हैं और कहा जाता है कि इनकी कई कहानियों में असंयमित और अमर्यादित चित्रण है। यशपाल जी ने स्पष्ट किया है कि सन्तान की उत्पत्ति के उद्देश्य से प्रकट होने वाला प्रेम सभी जीवों और मनुष्यों में पैदा होता है । अपने क्रम को जारी रखने के लिये ही सृष्टि स्त्री-पुरुष में आकर्षण पैदा करती है । प्रेम और आकर्षण का प्राकृतिक, शाश्वत और मूल रूप यही है । आध्यात्मिक प्रेम को इन्होंने नपुंसक प्रेम माना है और शायद इसी कारण वे कहानियों में प्रेम का चित्रण खुल कर करते हैं। वास्तव में श्लीलता अश्लीलता की समस्या यशपाल की प्रेमिकाओं के सम्मुख नहीं रहती । इनके सम्मुख प्रमुख समस्या यह रहती है कि वे अबला नारी को अपने से अलग कर किस प्रकार अपने को सतीत्व से मुक्ति दें, जिनके बन्धनों में उनके प्राण छटपटाते हैं, उनकी आत्मा तड़पती है।[1]

यशपाल की कई कहानियों में नारी को प्रमुख स्थान मिला है। पूंजीवादी समाज में नारी भोग-विलास की सामग्री समझी जाती है और विलास का साधन मात्र रह जाती है। हमारी संस्कृति में नारी को सदैव श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता रहा है और मातृत्व का दायित्व वहन करने के कारण उसे गौरवशालिनी माना जाता है। यशपाल ने भी नारी को मार्क्सवादी दृष्टि से ही देखने का प्रयत्न किया है। डा0 देवराज उपाध्याय मानते हैं कि यशपाल में फ्रायड और मार्क्स मानों अपने समस्त विरोध का परित्याग कर साथ-साथ गुलाबाही देकर घूम रहे हैं ।[2] इन्होंने समाज की बदली हुई आवश्यकता के अनुकूल भूमिका तैयार की है और युग जीवन के प्रति वह पूर्णतया जागरूक रहे हैं । उन्होंने सामयिक समस्याओं पर आघात किया है पर ध्वंस के लिये नहीं, उसमें निर्माण का स्वर है । करुणा निष्फल नहीं है, उनका आक्रोश बेमतलब नहीं है ।[3] इनकी कई कहानियों में नये मूल्यों का भी प्रमुख स्वर है । इनकी भाषा यथार्थ गुणों को लेकर विकसित हुई है। इनकी कई छोटी-छोटी कहानियां रेखाचित्र का स्मरण दिलाती हैं। वास्तव में जिस प्रगतिशील दृष्टिकोण, सामाजिक दायित्व के निर्वाह की भावना और सामाजिक संचेतना, के साथ युग-बोध को चित्रित करने के माध्यम से 'नई जमीन' तोड़ने की बात नई कहानी में उठाई जाती है उस परम्परा का सूत्रपात वास्तव में प्रेमचन्द ने और विकास बाद में यशपाल ने किया, नई कहानी ने नहीं।[4]

अब यशपाल की कुछ कहानियां ले सकते हैं। 'कुछ समझ न सका' में सुजला पति और दो बच्चों के रहते हुए भी व्यास के प्रति अपने आकर्षण को न रोक सकी, वह पति की अनुपस्थित में व्यास से काफ़ी खुल जाती है । स्त्री-पुरुष स्वातन्त्र्य पर बातें होती हैं । व्यास का तात्पर्य था कि पुरुष अपनी आवश्यकता के अनुसार स्त्रियों का उपयोग करते हैं और पुरुषों के लिये उपयोगी होने के कारण ही स्त्रियां परिवार की केन्द्र हैं, उनका ध्यान रखा जाता है ।[5] व्यास ज्यों ही उसे अपनी बाहों से लेता है, सुजला को जैसे बिजली का तार छू गया हो। यहां कहानी में पातिव्रत्य पर व्यंग्य है—"पतिव्रता का मतलब है जैसे हिन्दुस्तानी अपनी राजभक्ति का अभिमान करके रायसाहब बनने का अरमान रखते हैं उसी तरह स्त्रियां भी पति की सम्पत्ति होने के अभिमान में पतिव्रता और साध्वी होने का दावा भी करती हैं और स्वतंत्रता का दावा भी करती हैं ।[6] 'पराया सुख

1. हिन्दी कहानी–उद्‌भव और विकास, डा0 सुरेश सिन्हा, पृ0 521 सं0 1967
2. वही, 522
3. आलोचना, अक्तूबर, 1952, त्रैमासिक, पृ0 147
4. यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य, सुरेन्द्र तिवारी, पृ0 162, सं0 1956.
5. आधुनिक कहानी परिपार्श्व लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय0, सं0 1966
6. कुछ समझ न सका, यशपाल, ज्ञानदान, पृ0 41, सं0 1959

Scanned with CamScanner

की उर्मिला भी पत्नी है, गरीब है, मां है विवशता से जीवन व्यतीत करती है परन्तु इस गरीबी में भी उसका कुछ अपनापन है वह हां या ना कर सकती है परन्तु जब से वह सेठी के जाल में फंस गई उसका अपनापन जाता रहा है। सेठी ने स्वयं ही सब चीजों पर अधिकार कर लिया, और बड़ी सरलता से। मानो सब चीज़ों की एक चाबी थी, जिसे उठाकर उसने अपनी जेब में रख लिया है। उस जाल से बाहर हो सकने का कोई रास्ता न उर्मिला के लिये, न बबनू के लिये और न मदन के लिये ही है मानो वे सब बिक गये हैं।[1] उर्मिला को ग्लानि होती है कि वेश्याओं का जीवन और क्या होता है? वे सेक्स को शारीरिक आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। इन्दु को इन्होंने अपने परिश्रम से प्रसिद्ध इतिहासकारों में अपना नाम सुरक्षित दिखाया है किन्तु फ़िर भी उसे अभाव का अनुभव है। वह अपना क्रम जारी रखने के लिए एक सन्तान चाहती है अपने आपको समाप्त होने से बचाने के लिये। अपना क्रम जारी रखने के लिये सन्तान की कामना उसे उद्वेलित करती है।[2] यह अपने यौन-सम्बन्ध और सन्तान का अभाव है। इन्दु इस अभाव के दूर करने का प्रयत्न करती है परन्तु उसकी कुरूपता और नैतिकता बाधक बन जाती है। ज्योत्सना कपूर की पत्नी है उसे सती-साध्वी होने पर गर्व है किन्तु बैंजल के यह कहने पर कि स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण में स्त्री का काम चाहने योग्य वस्तु बन कर पुरुष को निमन्त्रण देना है और पुरुष का काम है उसे पाने के लिये यत्न करना।[3] वह उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है परन्तु बैंजल उसे अन्य पुरुष की सम्पत्ति मानकर ठुकरा देता है। यौन-सम्बन्धों के आचरण में नवीनता पर तीखा व्यंग्य यशपाल ने किया है—एक सरदार पांच लड़कियों के सौंदर्य पर नम्बर देते हुए अपने उपस्थित मित्र की बहन को 90। 100 नम्बर देता है पुनः बताया जाने पर सरदार बेपरवाही से सरकार कहता है— सभी लड़कियां किसी न किसी की बहिन होती हैं।[4] यशपाल सौंदर्य में तर्क को महत्व देने के पक्ष में हैं और सौंदर्य को उपयोगी प्रमाणित करते हैं सौंदर्य के चित्रण और कला की साधना के साथ तर्क की पुरुष प्रवृत्ति का मेल असंगत जान पड़ता है परन्तु सौंदर्य और कला के लिये तर्क उतना ही आवश्यक होता है जितना फ़ुलवाड़ी सजाने से पहले भूमि को खोद डालना। सुन्दर और असुन्दर में भेद और असुन्दर को सुन्दर बना सकने का प्रयत्न विवेक और तर्क के बिना निश्चित कैसे हो सकेगा, इसलिये सौंदर्य का मूल तर्क ही है।[5]

भारतीय हिन्दू विधवा का करुण और यथार्थपूर्ण चित्रण इन्होंने 'वैष्णवी'[6] में किया है। भारतीय नारी इतनी छोटी आयु में विधवा हुई कि उसे अनाचार, अपराध और उत्तरदायित्व का बोध ही नहीं होता है। उसे अपने अधिकारी से उस समय हमेशा के लिये वंचित किया जाता है– पोदी तो अपने दण्ड और दुर्भाग्य को जान भी न पाया न उसके लिये रोया। लड़की आंखें और नाक तो मलती रही लेकिन वैधव्य के शोक में नहीं, बालशरीर के कष्टों और आदत के लिये। 'सत्य का छल' में एक विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त अध्यापक के हृदय में छल का चित्रण है जो अवकाश प्राप्त कर किसी को काम करने के लिये नहीं कह सकता है। अपने ही कमरे में सब सामान रखता ताकि औरों को कोई काम न कहना पड़े, ज्यों ही इसी अध्यापक की मृत्यु होती है तो उसका पुत्र अपनी बैठक को आधुनिक ढंग से सजाना चाहता है अतः उसने पिता की बहुत सी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं

1. पराया सुख, यशपाल, वही, पृ0 65
2. निर्वासिता, यशपाल (तर्क का तूफान) पृ0 17, सं0 1962
3. होली नहीं खेलता, यशपाल—तर्क का तूफान, पृ0 87=88 सं0 1962.
4. 80/100, यशपाल, ज्ञानदान, पृ0 72, सं0 1959
5. तर्क, यशपाल (तर्क का तूफान), पृ0 सं0 1962.
6. वैष्णवी, यशपाल, नई कहानियां, जून, 1963, पृ0 15

अध्ययन प्रेमी परिचितों में बांट दीं।[1] यशपाल जी की कहानियों का आरम्भ ही उत्सुकता बढ़ाने वाला है। 'चोरी और चोरी' कहानी का उदाहरण दिया जा सकता है—'यदि नामों के अभाव में सर्वनामों के ही प्रयोग से आपको कुछ उलझन या असुविधा हो तो औचित्य की दृष्टि से उसे क्षम्य समझना। हावड़ा स्टेशन पर अपने नगर का टिकट खरीद लेने से पहले उसके मन में काफ़ी समय विवाद, उहापोह और दुविधा रही। 'इकतीस वर्ष पूर्व की अपनी पत्नी और बेटे के पास अपने घर मुहल्ले और नगर में लौट चलना उचित होगा। पिता तो अब कहा रहे होंगे? परिचय देने पर हो वे लोग उसे पहचान सकेंगे? पहचान कर चकित तो होंगे उनका व्यहार कैसा होगा?'[2] इनकी 'जबरदस्ती' कहानी में नारी एक पत्नी और मां है परन्तु वह स्वतंत्र नहीं है वह ऐसी मां है जिसे अपना बच्चा भी प्यारा नहीं है, उसका कथन[3]—"इस कम्बख्त आया को जाने क्या हो जाता है बच्चे को मेरे ही सिर पर पटक जाती है।" उसकी कटुता को व्यक्त करता है। मां को बच्चा प्यारा नहीं लगता। जब जब नारी के शरीर के लहू और मांस से उसके मन के खिलाफ एक आदमी तैयार किया जा रहा है, तब उसे कैसा लगेगा, एक आदमी बेजान, जिसमें हिम्मत नहीं, हौसला नहीं।' इसका मूल कारण उन नारियों की इच्छा न होना है, यदि निर्णय अपना हो तो ऐसे बात नहीं रहती। स्त्रियों के लिये आजादी का मतलब क्या है? उनके घर हैं, पति हैं परन्तु यह सब क्या सोच समझ कर उनकी इच्छा से होता है। उन्हें जिस दड़बे में बन्द कर दिया वहीं अण्डे देने लग जाती हैं। उनकी आजादी का निर्णय भी पुरुष ही करते हैं–"पुरुष ही इस बात का निश्चय करेंगे कि स्त्री को आज़ादी चाहिए या नहीं और चाहिए तो कितनी मात्रा में। स्त्रियों में जितना सदाचार और इखलाक है। वह सब मर्दों का बनाया हुआ है"।[4] 'डायन' कहानी में जिला कांगड़ा पालमपुर का परिवेश है। भाषा में एक दूसरे की भाषा न समझने के कारण प्रेम प्रस्फ़ुटित नहीं हो सका। यशपाल ने स्वयं कहा है कि आज यदि कोई शकुन्तला किसी दुष्यन्त द्वारा भुला दी जाए और अपमानित की जाने पर भी फ़िर उसी पति के चरणों का आश्रय चाहती है तो वह नारी मुझे मानवीय आत्म सम्मान से शून्य अत्यन्त हेय नारी ही जान पड़ेगी। यशपाल ने उस नारी का चित्रण भी किया है जो अपने पति को सोने के लिए भेजती है और स्वयं अतिथि का पूरा ध्यान रखती है। वह उसके शरीर के अंग दबा रही है और बार बार उसके ठीक होने का हाल पूछ रही थी। यह नारी की स्वतन्त्र प्रवृत्ति का प्रतीक है जब वह पति को कहती है– जाओ ऊपर जाकर लेटो ना। प्रातः काल वह अतिथि को जाते समय रोटी नाश्ता भी साथ रखने के लिए देती है परन्तु पति उसे बदमाश कह कर घर से निकाल बाहर करता है। केवल 'प्रतिष्ठा के बोझ' कहानी में वह सास और बहू के इतने निकट हुआ कि उसने दोनों की कमजोरी जान ली, यद्यपि उसकी स्वयं की ही हानि होती थी परन्तु वह प्रतिष्ठा के बोझ से दब रहा था। यहां भी लेखक ने नारी की भूख का यथार्थ चित्रण किया है। 'धर्मरक्षा' कहानी में लेखक ने पिता और पुत्री दोनों को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए दिखाया परन्तु पुत्री गुरुकुल से वापिस आने पर पिता की अनुपस्थिति में नौकर की वासना का शिकार हो जाती है स्वयं वह उससे पूर्व मन्त्र भी पढ़ लेती है जब पिता आकर देखता है तो कन्या के प्रति वह स्वयं संयत नहीं रह सकता। पुत्री उसे समझाती है, "नहीं, मैंने ब्रह्मचर्य से युवा पुरुष को बरा है। वे हारे हुए जुआरी की भांति देखते रहें। यद्यपि संसार की सभी युवा स्त्रियां, पुत्रियां, बहनें और मातांए हैं परन्तु पुरुष के लिए नारी नारी है पुत्री के प्रति ऐसा कर्म सोच

(1) सत्य का द्वन्द्व, यशपाल, सारिका, दिसम्बर, 1964 पृ0 8
(2) चोरी और चोरी, यशपाल, नई कहानियां, फ़रवरी 1963, पृष्ठ 19,
(3) जबरदस्ती, यशपाल (ज्ञानदान) पृ24, 1959,
(4) वही, पृष्ठ 87।

बहनें और माताएं हैं, परन्तु पुरुष के लिए नारी नारी है । पुत्री के प्रति ऐसा कर्म सोच कर भी उसने सन्यास ग्रहण किया और पुत्री को कहा—"तुमने असंयम और पाप किया है । कन्या विवाह माता-पिता की अनुमति से होने पर ही उसे गृहस्थ का अधिकार होता है·········मैं योग्य वर से तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूंगा ।" 'पतिव्रता' में इन्होंने 'सुमति' का चरित्र दिखाया जो विवशता से अमीर वृद्ध सेठ की पत्नी हो जाती है, प्रेम और उल्लास की बात भूल सी जाती है और सेठ के स्वास्थ्य की चिन्ता अधिक करती । एक बार एक वेश्या ने उसके सेठ के पास कुछ क्षण रहना भी अस्वीकार किया क्योंकि सेठ की बदबू उसे असहनीय थी अतः वह पच्चीस हज़ार का चैक भी वापस किया और यह सुमति है पतिव्रता है, जिसने कालेज की नौकरी छोड़ करोड़पति सेठ की तीसरी बहू बनना स्वीकार किया था । उसके लिए प्रेम, जो एक दिन उमंग और कल्पना की वस्तु थी, अब उसका कर्त्तव्य ही धर्म था । यह धर्म और कर्त्तव्य उसे निबाहना ही था इसी लिए सुमति के मस्तिष्क में बसी कल्पना, कला, कविता और प्रेम-प्रणय के स्वप्नों का स्थान ले लिया पति की सेवा के कर्त्तव्य की भावना और पातिव्रत धर्म की दृढ़ आस्था ने । 'करवा का व्रत' में भी लाजो की यही पतिव्रत भावना है । जब एक व्रत में उसे पति ने डांटा और लाजो ने कहा कि मार ले, मैंने मौन व्रत रखा है तेरे लिए जो जन्म-जन्म तेरी मार खाऊंगी । इससे उसके पति को धक्का लगा और उन दोनों की मानसिक स्थिति बदल गई, अब वे दोनों सन्तुलित और व्यवस्थित ढंग से रहने लगे । इतना ही नहीं अगले करवे के व्रत पर दोनों ने व्रत रखा । 'उत्तमी की मां' कहानी में लेखक ने निराश नारी की ब्रह्मसाधना और विवशता का चित्रण किया है । 'उत्तमी की मां' विधवा है । वह पुत्री का विवाह नहीं कर सकती, जब कर सकती है तो वर मिलता नहीं । परिणाम स्वरूप उत्तमी भी उल्टे-सीधे कार्य करती है यद्यपि वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काफी आधार रखते थे पर बाद में वह स्वयं भी निराश हो गई और प्राणायाम में ही उसका शरीर समाप्त हुआ । भारतीय विधवा अपनी विवशता से अपनी पुत्री का जीवन भी सुखी नहीं बना सकती है । यशपाल जी स्त्रियों की समस्या टेढ़ी मानते हैं । रोटी, कपड़े और ज़ेवर पर वे घर सम्हालने और बच्चे पैदा करने का काम करती हैं । वे न बेरोज़गार हैं और न बेचैन हैं, कहने में वास्तव में व्यंग्य है । यशपाल जी ने प्रेमचन्द की भांति जीवन के प्रत्येक पक्ष की ओर दृष्टि रखी है, एक विशेष विचारधारा से प्रेरित एक पूरा युग उनकी कहानियों में उपलब्ध है । इनकी कई कहानियों में नई मान्यतायें हैं और भाषा यथार्थ के अति निकट है । इनमें शैलीगत विविधता नहीं है, छोटी कहानियों की शिल्प विधि सुन्दर है । आधुनिक युग के कहानी साहित्य में यशपाल की कहानियों का अपना महत्व है ।

—हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला ।

अप्सरा का श्राप : एक मूल्यांकन

—डा0 ओम प्रकाश सारस्वत

प्रस्तुत उपन्यास नारी के प्रति सामाजिक अन्याय तथा पुरुष के अहं, उच्छृंखलता एवं भोगवृत्ति को चित्रित करने के उद्देश्य से प्रेरित हो कर रचा गया है । प्राचीन कथावृत्तों, महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान तथा महाकवि कालिदास के शाकुन्तल पर आधारित होते हुए भी उपन्यास के कथानक में लेखक ने कुछ नवीन उद्भावनाएं की हैं । अप्सरा-मेनका के शाप की कल्पना इसमें प्रमुख है । संक्षेप में 'अप्सरा का श्राप' का इतिवृत्त इस प्रकार है–

ब्रह्मर्षि पद न मिलने पर, नई सृष्टि की रचना हेतु महर्षि विश्वामित्र उत्कट तप में लीन हैं । महर्षि तपश्चर्या के बल पर कोई नवीन सृष्टि न रच डाले अतः देवता चिन्तित हो भयाक्रान्त हैं । फलतः इन्द्र, स्वर्ग की सौंदर्य राशि मेनका को ऋषि के तप में विघ्न उत्पन्न कर, उसे अध्यात्म से विरत करने का आदेश देता है । मेनका आती है, वह अपने कार्य में सफल होती है । मेनका और विश्वामित्र के यहां एक पुत्री पैदा होती है । परन्तु चूंकि न तो अप्सरा को सांसारिकता में पूर्ण आसक्ति है और न ऋषि को । फलतः मेनका पुत्री को पिता की गोद में छोड़ स्वर्ग चली जाती है और पिता उसे मालिनी नदी के तट पर बसे महर्षि कण्व के आश्रम के नज़दीक छोड़ कर स्वयं हिमालय की ओर तपश्चर्या हेतु प्रस्थान कर जाते हैं । अब परित्यक्ता वह बच्ची शकुन्तों अर्थात् पक्षियों से घिरी होने के कारण गौतमी और कण्व को मिली, अतः उसका नाम गौतमी ने शकुन्तला रख दिया ।

अगला घटनाक्रम शाकुन्तल नाटक के अनुरूप ही है । राजा दुष्यन्त आखेट के लिये वन में आता है । वह अद्भुत रूप-लावण्य की राशि शकुन्तला को देखते ही विमोहित हो जाता है । उसका डेरा आश्रम के पास वाले मित्तल नामक ग्राम में है । वह शकुन्तला के प्रति उपजे मोह के दंश को मिटाने के लिये मदिरापान भी करता है । वह आश्रम में आकर शकुन्तला के प्रति इस भाव से आश्वस्त हो जाता है कि वह ब्राह्मण कन्या नहीं अपितु क्षत्रिय कन्या है । वह शकुन्तला की याचना का प्रस्ताव रखता है । पहले तो गौतमी-शारंगरव आदि इसे अपनी असामर्थ्य कह कह अमान्य कर देते हैं परन्तु जब वह शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को राज्य का भावी-उत्तराधिकारी बनाने का वचन देता है तो वे कण्व की अनुपस्थिति में इसके लिये उद्यत हो जाते हैं । राजा का शकुन्तला से गांधर्व विवाह हो जाता है । राजा कितनी रातें शकुन्तला के साथ गुज़ार देता है । जब कण्व तीर्थयात्रा से लौटते हैं तो उन्हें इस वृतांत की सूचना दे दी जाती है । 'शाकुन्तल' में कण्व तप के प्रभाव से स्वयं इस घटना की अवगति पा लेते हैं । प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने ऐसे दैवी चमत्कारपूर्ण अथवा अलौकिक शक्तिसम्पन्न प्रसंगों से बचते रहने का प्रयास किया है ।

राजा राजधानी लौट जाता है । अब इधर शकुन्तला पति के ध्यान में मग्न रहती है । एक बार ऐसे ही मौके पर दुर्वासा ऋषि आ जाते हैं । वे पुकारते हैं, शकुन्तला कान नहीं दे पाती । वे पहले तो गुस्से होते हैं परन्तु बाद में शांत हो जाते हैं । यहां वे 'शाकुन्तल' की तरह शाप हीं देते । उलटे कण्व को, शकुन्तला के पतिगृह गमन हेतु प्रेरित करते हैं । शकुन्तला पतिगृह जाती है । शारंगरव और गौतमी भी साथ जाते हैं । चलते समय चक्रवाको के सिर को छू कर, उड़ जाने के अपशकुन से मन आशंकित हो उ ता है ।

राजा अपनी राजधानी में, तीन रानियों के होते हुए भी शकुन्तला के प्रति व्याकुल है। उसकी रानी लक्षणा गर्भवती है और उसे चक्रवर्ती लक्षणों से युक्त पुत्र होगा, यह बात ज्योतिषियों न बताई है। राजा अब शकुन्तला को दिए गये अपने वचन को याद करके मन में डर रहा है। उसने माधव्य से शकुन्तला वाली बात किसी से न कहने की शपथ ले ली परन्तु शकुन्तला के प्रति उसकी आसक्ति बनी रही। फिर भी शकुन्तला के प्रति राजा के आकर्षण को, माधव्य ने यह कह शिथिल कर दिया कि छह मास की गर्भवती आश्रमकन्या को राज प्रासाद में लाकर प्रासाद और प्रजा में, स्वभावतः अपवाद फैल जायेगा अतः माधव्य के परामर्श से दुष्यन्त ने समस्या का समाधान, मौन द्वारा कण्व के संदेश की अवहेलना में समझा। एक ऋषि बागीश से राजा को महर्षि कण्व का सन्देश तथा शकुन्तला की गर्भावस्था का समाचार मिल चुका था।

इधर रानी लक्षणा के प्रसव का समय समीप था और उधर कण्व के आश्रम से शकुन्तला समेत तपस्वीगण पधारे। असमंजस में पड़े राजा को विदूषक ने प्रकारान्तर से मुकर जाने को ही कहा। निष्कर्षतः राजा ने शकुन्तला को पहचानने से इन्कार कर दिया। इस कार्य में माधव्य ने राजा––पक्ष की विशेष वकालत की। सानुमती ने, मेनका से सारा वृतांत सुन कर, उसे मातृसत्ताक प्रदेश में महर्षि कश्यप के आश्रम में ले जाने का आदेश दिया। शकुन्तला अब अपना कलंकित मुख आश्रम में कण्व को दिखाना नहीं चाहती थी। उसने उसी शक्रावतार के शचीतीर्थ में, जिसने उसके सौभाग्य की प्रतीक मुद्रा को लील लिया था, स्वयं को डाल देना चाहा। कालिदास द्वारा रचित शाकुन्तल में, राजा के पहचानने से मना कर देने पर, शारंगरव और शाद्वतमिश्र उसे अपने साथ ले जाने से मना कर देते हैं परन्तु यहां स्थिति विपरीत है।

रानी सुलक्षणा को विकलांग पुत्र प्राप्ति हुई। राजा ने इसे भाग्य का दोष माना। राजा दुःखी रहने लगा। एक दिन मछुए से, वही शकुन्तला को दी हुई, राजा ने अपनी अंगूठी प्राप्त की। इस घटना से राजा का मन और भी उद्विग्न हुआ। इससे आगे की कथा शाकुन्तल के अनुसार है––राजा का देश-कार्य-साधने के लिये स्वर्ग जाना, लौटते हुये महर्षि कश्यप के आश्रम में अपनी भूल मान कर, क्षमा-याचनापूर्वक शकुन्तला को पुत्र-समेत वरण करना। यद्यपि शाकुन्तल नाटक की कथा यहीं पर समाप्त हो जाती है परन्तु यहां पर लेखक ने अन्त में मेनका और शकुन्तला के परस्पर संवाद द्वारा, व्रत द्वारा, धर्म निर्वाह द्वारा-आत्मोत्यान अथवा आत्महनन के प्रश्न पर विचार किया है। शकुन्तला जब पातिव्रत धर्म, या 'पति देवो भव' को ही सर्वस्व मानती है इस के लिये चाहे उसे आत्महनन भी क्यों न करना पड़े तो, मेनका सदोष तर्जनी उठा कर, श्राप देती है कि 'एवमस्तु' अर्थात्, अगर तू पतिव्रता मात्र ही रहेगी तो तू व्यक्ति अथवा मानव नहीं रहेगी, अपने व्यक्तित्व से हीन हो जायगी।

लेखक ने अन्त में अन्याय के प्रतिकार एवं अंध श्रद्धा की जड़ता के प्रतीक रूप में अप्सरा मेनका तथा शकुन्तला का संवाद दिखाया है।

अप्सरा का श्राप, यशपाल ने अपनी नारी सम्बन्धी मान्यताओं को प्रस्तावित करने के ही उद्देश्य से लिखा। पुरुष के नारी पर शाश्वत अधिकार, उसकी आर्थिक पराश्रयिता एवं मर्यादा की लक्ष्मणरेखा जैसी बुर्ज्वा प्रवृत्तियों के प्रति बदलती सामाजिक चेतना के अनुरूप अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान ही इस उपन्यास का मूल मन्तव्य है। लेखक ने 'पति देवो भव' जैसे पुराणपंथी किन्तु आदर्शमय सिद्धांतों को अभिशप्त मनोवृत्ति का प्रतीक माना है, तभी तो अप्सरा मेनका के मुंह से शकुन्तला की उस पतिभक्ति को जो नारी को कभी व्यक्तित्व सम्पन्न अथवा 'मानव' नहीं बनने देती, 'श्राप' दिलवा दिया।

छद्मपटु राजा दुष्यन्त का, भोली वन कन्या शकुन्तला को, (उससे उत्पन्न पुत्र को उत्तराधिकारी बना देने का लालच देकर) भोग का विषय बनाना उच्चवर्ग की स्वच्छंद कामुकवृत्ति का ही द्योतक है। राजा दुष्यन्त को लेखक ने इसी कामुक प्रवृत्ति का प्रतिरूप बना कर चित्रित किया है। कालिदास की तरह दुष्यन्त के शील की रक्षा हेतु दुर्वासा के शाप की कल्पना यहां न करके, महाभारत के दुष्यन्त की तरह ही, राजा का चरित्र उद्घाटित किया है जो स्वाभाविकता के भी अधिक निकट है और प्रकारान्तर से सामन्ती दृष्टिकोण को उजागर करने में भी समर्थ है।

उपन्यासकार ने, सामयिक संदर्भों में प्रस्तुत उपन्यास की कथा को वृवृति देने का प्रयास किया है। उसके अनुसार भी––'शकुन्तला की कथा पातिव्रत धर्म में निष्ठा की पौराणिक कथा है। महाभारत के प्रणेता तथा कालिदास ने उस कथा का उपयोग अपने अपने समय की भावनाओं, मान्यताओं तथा प्रयोजनों के अनुसार किया है। उन्हीं के अनुकरण में 'अप्सरा का श्राप' के लेखक ने अपने युग की भावना तथा दृष्टि के अनुसार शकुन्तला के अनुभवों की कल्पना की है।' उक्त कथन के अनुसार लेखक ने शकुन्तला को सामान्य नारी के धरातल पर स्थित पा कर, उसके अनुभवों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में चित्रित कर, अपने समय की मांग को वाणी दी है।

यशपाल ने जिस समय इस उपन्यास की रचना की है––उस समय 'वुमन लिब' की लहर पूरे यौवन पर थी। पश्चिम की देखा-देखी एवं प्रेरणा से भारत की ना ी भी जागरूक हो रही थी। उसे अपने अस्तित्व का भान होने लगा। था वह, अब वह पुरुष की आजन्म अथवा जन्मान्तरों तक दासी बन कर, निजी अस्तित्व को महत्वहीन कर देने की भावना से मुक्ति कामिनी बन रही थी। वह सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक सभी क्षेत्रों में पुरुष की सहभागिनी हो कर कार्य करने को व्यग्र थी। उपन्यासकार ने शकुन्तला के उपाख्यान की पुनरावृत्ति इसी नारी चेतना से प्रेरित हो कर की है।

लेखक ने कथानक का निर्वाह यद्यपि 'शाकुन्तल' के अनुसार ही किया है तथापि शकुन्तला और मेनका द्वारा, श्रद्धा, पातिव्रत जैसे भाववादी मूल्यों का, तर्क एवं स्वतंत्र विचारसत्ता जैसे प्रगतिशील मूल्यों से संघर्ष दिखा कर, पनपती सामाजिक भावना को महत्व दिया है। शकुन्तला जब दुष्यन्त के कहने पर राज महलों में, सब कुछ भूल माफ कर, चलने लगी तो मेनका नें पुत्री से जिज्ञासा की कि तू कहां जा रही है, तो शकुन्तला ने पति के आदेश की दुहाई देकर स्पष्ट होना चाहा, परन्तु मेनका ने इस पर खिन्न स्वर में प्रश्न किया-'पति?, उसका छलप्रपंच पहचान कर, उससे पशुवत् निरादर पाकर भी उसे पति कहती है? तुझे अपनी वासनापूर्ति तथा सम्पत्ति के लिये और उत्तराधिकारी प्राप्त करने का साधन मात्र मानने वाले को पति कहती है। तूने उसकी प्रकृति और स्वभाव नहीं पहचाने'[1]। ये प्रश्न वस्तुतः उस अन्धश्रद्धा एवं पतिभक्ति से मुखातिब हैं, जो सब कुछ सहकर भी स्वयं को मारती है। प्रतिकार की दिशा में निष्चेष्ट रहती हैं। जो अपने व्यक्तित्व को पहचानती नहीं।

राजा दुष्यन्त ने लोकापवाद के कारण अपनी परिणीता पत्नी का परित्याग कर दिया। जमाने की नज़रों में वह फिर भी दोषी नहीं और जिस ने अपना सर्वस्व लुटा दिया, सारे पापों की जड़ वही। ऐसा क्यों? क्या यह नारी के प्रति पुरुष के अत्याचार का उदाहरण नहीं? उपन्यासकार ने इसका उत्तर दिया है।

[1].अप्सरा का श्राप-पृष्ठ, 127

शकुन्तला के प्रति हुए अन्याय को, मेनका के वचनों द्वारा न्यायसंगत ठहराया गया है । प्रजापति कश्यप के मुंह से भी यह कहलवा कर, कि—'पुरुष पत्नी के प्रति निर्दयता से स्वत्व का व्यवहार करने पर प्रेमी और पति नहीं रहता, शत्रु और अपराधी बन जाता है,'[1] नारी को उचित सम्मान देने की ओर ही इंगित है ।

इस उपन्यास में लेखक ने, दुर्वासा के शाप की कल्पना नहीं अपितु अप्सरा के श्राप की कल्पना की है। दुर्वासा ने तो अपने प्रेमी पति के प्रेम-चिन्तन में निमग्न शकुन्तला को शाप दिया, जो बिना अपराध के दण्ड देने जैसी सज़ा है । परन्तु यहां लम्पट पति के प्रति अंध-पातिव्रत धर्म से प्रेरित उस नारी को श्राप दिया गया है जो अपना महत्व नहीं पहचानती, जिसके लिये व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं । जो आत्मरक्षा, आत्मनिर्भरता, आत्म सम्मान के मूल्य को नहीं समझती । ठीक भी है, जो गर्त्त से उठना ही न चाहे उसे फिर सहायता के लिये उद्यत व्यक्ति भी यही कहेगा कि, मर-फिर ! रह यहीं पर !

उपन्यासकार ने उपन्यास का ढांचा यद्यपि महाभारत एवं कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् पर ही खड़ा किया है तथापि मुनि विश्वामित्र-एवं मेनका के प्रेम-प्रसंग को कुछ विस्तार के साथ चित्रित किया है । शाकुन्तल आदि ग्रन्थों में यह प्रसंग सूच्य मात्र ही है । लेखक ने दुर्वासा का प्रसंग व्यर्थ में ही चित्रित किया है । जो सुझाव उसने कण्व को दिलाया है वह, गृहस्थी या काम-सम्बन्धी सुझाव, अनुसूया अथवा गौतमी के द्वारा भी दिलाया जा सकता था, क्योंकि लेखक ने अनुसूया को गृहस्थ धर्म में निपुण दर्शाया है । लेखक ने कुछ पात्रों के सम्बन्धों को भी स्पष्ट किया है, जैसे, कण्व और गौतमी का रिश्ता भाई-भगिनी का, तथा अनुसूया और शा गरव का पत्नी पति का । इस प्रकार की सम्बन्ध-स्थापना अन्यत्र नहीं मिलती । यह लेखक की कल्पना है, यद्यपि इस से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा है । हां, एक बात अवश्य हो गई है कि इस प्रकार की सम्बन्ध-कल्पना से आश्रम का वातावरण, घरेलू वातावरण जैसा हो गया है । उपन्यास पढ़ते समय आश्रम जैसी प्रतीति का भाव जग नहीं पाता । शारंगरव, शारद्वत, प्रियंवदा, अनुसूया, शकुन्तला तथा गौतमी के परस्पर, सम्बन्धोच्चार से, किसी गृहस्थी जैसी ही प्रतीति का अनुमान होता है ।

—अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पत्राचार
पाठ्यक्रम निदेशालय, हिमाचल प्रदेश
विश्वविद्यालय, शिमला-4.

[1]. वही, पृष्ठ 126

'झूठा: सच'-बदलते समाज का दर्पण

—अमरजीत कौर

यशपाल अपने प्रारम्भिक जीवन से ही क्रान्तिकारी विचारों के थे । इन विचारों का मूल वर्गसंघर्ष का सिद्धान्त था । इन्हीं विचारों के परिणाम स्वरूप इन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा । यही कारण था कि इनकी रचनाओं में वर्ग संघर्ष का चित्रण मिलता है । एक अच्छे कहानीकार होने के साथ साथ यशपाल एक सफल उपन्यास-कार भी थे । दादा कामरेड, देशद्रोही, दिव्या, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप, अमिता, झूठा सच, उनके श्रेष्ठ उपन्यास हैं । यद्यपि हिन्दी उपन्यास साहित्य में राजनीतिक उपन्यास बहुत कम लिखे गए हैं, फिर भी जितने लिखे गए हैं उनमें झूठा सच सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । यह उपन्यास यशपाल की जीवन दृष्टि भी है जो प्रायः उनके समस्त उपन्यास साहित्य में देखने को मिलती है ।

'झूठा सच' उपन्यास दो खण्डों में विभाजित है । 'झूठा सच (वतन और देश) सन् 1958' और 'झूठा सच (देश का भविष्य) सन् 1960' यह वृहद्काय उपन्यास कतिपय सीमाओं के बावजूद राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ चित्रण में यशपाल की कला को शीर्ष बिन्दु में पहुंचाता है । प्रथम खण्ड स्वतन्त्रता से पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद देश विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिक दंगों को यथार्थरूप में प्रस्तुत करता है । द्वितीय खण्ड स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस शासन के अन्तर्गत देश की विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित करता है । सामान्य जनता किस तरह से शासकों के दमन-चक्र में पीसती चली जाती है और एक सीमा के बाद विरोध भी करती है । इसके साथ ही साथ भारतीय निम्न व मध्यवर्गीय परिवारों के रीतिरिवाजों तथा धर्म संबधी रूढ़ियों पर भी प्रकाश डाला गया है जिसका विरोध युवक और युवतियां अपने साहसपूर्ण कदमों के उठाने पर करते हैं ।

उपन्यास में देश के विभाजन की विस्फोटक घटना को कथानक का आधार बना कर यशपाल ने सराहनीय कार्य किया है । कथानक के विकास में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों ने भी सहयोग दिया है । स्वतन्त्रता के बाद जो परिवर्तन लोगों के विचारों में होता है उसका उल्लेख पारसनाथ मिश्र इन शब्दों में करते हैं—"नए युग का प्रभाव भी धीरे धीरे छन कर आने लगता था तारा और जयदेव पुरी अपने पुरान रूढ़ समाज से प्रभावित होकर उससे अलग और आगे बढ़े हुए भी दिखाई पड़ते हैं । खत्री पुरी का ब्राह्मण लड़की, कनक के प्रति आकर्षण, प्रेम और विवाह इसी बात का संकेत हैं, यद्यपि उसका समाज और वह परिवार जहां वह जन्मा और पाला पोसा गया है, स्वच्छंद प्रेम संबंधी किसी भी दृष्टिकोण का विरोधी है । इस प्रकार का परिवर्तन केवल पुरुषों के दृष्टिकोण में ही नहीं, नारी की दृष्टि में भी दिखाई पड़ता है । तारा अपने परिवार द्वारा चुने गए पति का विरोध करती है और समाज ही नहीं, अपने धर्म से आगे बढ़ कर मुसलमान युवक

अश्रद्धा के प्रति समर्पित होने के लिए भी तैयार है। कथानक के ये दोनों प्रमुख पात्र सामाजिक यथार्थ का चित्र अंकित करने में पूर्ण समर्थ हैं।[1]"

विभाजन के समय हुए दंगों का सजीव चित्र उपन्यास में खींचा गया है। कर्फ्यू लगने, अनेक स्थानों पर आग लगने, छुरेबाजी की घटनाएं, लाहौर से लोगों का निष्कासन आदि घटनाओं का वर्णन राजनैतिक यथार्थ के अद्वितीय उदाहरण हैं। हिन्दुओं को घरों से निकाल कर कैम्पों में रखना, उनके सामान की लूट, निर्दोष नारियों का अपहरण, बलात्कार, गाड़ियां में यात्रियों की हत्या का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।

'झूठा सच' के दूसरे भाग में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेसी नेताओं में परिवर्तन का वर्णन है। स्वतंन्त्र होने से पूर्व वह जनता से समर्थन प्राप्त करने के लिए तरह तरह के वायदे करते थे लेकिन सत्ता के हाथ में आ जाने से वह भी जनता का शोषण करने में नहीं चूके। इसके उदाहरण के रूप में वह जालन्धर के कांग्रेसी नेता सूद तथा लखनऊ के पार्लियामैन्टरी सैक्टरी अवस्थी को देख सकते हैं। अन्त में जनता का सजग हो जाना तथा सूद जैसे स्वार्थी नेता का हार जाना देश के भविष्य का आभास देता है।

राजनैतिक वर्णन के साथ साथ सामाजिक वातावरण का भी सजीव चित्रण उपन्यास में किया गया है। डा0 मनमोहन सहगल के अनुसार "झूठा सच" में जीवन के प्रत्येक पक्ष को उद्घाटित किया गया है। मानव के सूक्ष्मतम संबंधों पर प्रकाश डाला गया है, मृत्यु, विवाह, प्रणय, अनाचार, बेकारी, गरीबी आदि सब का विशद वर्णन मिलता है। उपन्यास का आरम्भिक वाक्य 'सास के अन्तिम समय दोनों बहुएं उपस्थित थीं, मृत्यु की शाश्वत सत्यता की ओर ध्यान आकर्षित करता है। यहां रोने धोने, शोक स्यापे का यथार्थ रूप प्रस्तुत है, साथ ही आर्य-समाजी पुरुषों के सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।[2]" निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्र भी बड़ी कुशलता से खींचा गया है। गली में स्त्रियों की महफिलों का वर्णन, औरतों की बातचीत और उनके काम धंधे, लड़के लड़कियों के विवाह के सम्बन्ध में उनकी चर्चाएं आदि का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता से इस उपन्यास में किया गया है।

निम्न मध्यवर्ग के लोग सैक्स संबन्धी बातचीत बच्चों के सामने नहीं करते लेकिन बच्चे (शीलो और तारा उदाहरण के तौर पर) किवाड़ों की दरारों से झांक झांक कर सैक्स संबंधी जिज्ञासा का समाधान कर लेते हैं। यही नहीं, शीलो विवाहित हो जाने पर भी रत्न के साथ अपने संबंध बनाए रखती है और अन्त में पति को छोड़ कर रत्न के पास रहने लग जाती है। इसी प्रकार कनक भी पुरी का त्याग कर गिल को अपना लेती है। तारा भी अपने पति सोमराज को सुहागरात के दिन ही त्याग कर, कठिन परिश्रम द्वारा नौकरी प्राप्त करके डा0 नाथ से विवाह कर लेती है जिसका कड़ा विरोध उसका भाई पुरी तथा सूद करते हैं। उपन्यास में प्रणय और विवाह संबंधी ऐसे प्रसंग हैं जो विश्वसनीय नहीं हैं जैसे कि उर्मिला का पुरी के प्रति आकर्षण देखकर भी उसकी मां द्वारा उसे अकेली छोड़ कर (पुरी के पास नितान्त अकेली) दिल्ली चले जाना एकदम अस्वाभाविक है, जो कि भारतीय निम्न मध्यवर्गीय परिवारों में संभव नहीं।

साम्यवादी विचारों के प्रभावस्वरूप यशपाल जी नारी को पुरुष के समान सबल और हर कार्य में समर्थ मानते हैं। नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पक्षधर होने के नाते लेखक ने उसे अपनी इच्छानुसार प्रेम करने

1. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल—पारसनाथ मिश्रा, पृ0 148।
2. हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह—डा0 मन मोहन सहगल, पृ0 263।

और बिना विवाह किये साथ रहने की स्वतंत्रता अपने उपन्यास में नारी पात्रों द्वारा दी है। शीलो, तारा, कनक, उर्मिला, सीता मर्सी आदि नारी पात्रों द्वारा, सामाजिक परिवर्तन को लक्ष्य किया गया है। डा0 त्रिभुवन सिंह को इस बात पर आपत्ति है कि लेखक ने आधुनिक विचारों वाली स्त्रियों का संबंध केवल साम्यवादी उदार पुरुषों से ही कराया है। क्या इस संबंध के योग्य दूसरे विचारों के पुरुष नहीं थे ?

'झूठा सच' के प्रथम भाग में पुरी को आर्थिक रूप से विपन्न बतलाया गया है। वह नौकरी की तलाश में भटकता फिरता था लेकिन स्वतंत्र विचारों के कारण नौकरी मिल जाने पर भी नौकरी से बहिष्कृत कर दिया जाता था। झूठा सच के द्वितीय खंड में स्वतंत्रता के बाद उसे आर्थिक रूप से सम्पन्न दिखाया गया है, वह भी तब, जब वह सूद जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जो कि कांग्रेसी नेता हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न होते ही, उसके विचारों में परिवर्तन आ जाता है जो पहले निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता था बाद में बुर्जुआ समाज का प्रतिनिधित्व करने लगा। अब वह विधवा उर्मिला से अवैध संबंध स्थापित कर लेने के पश्चात् भी सम्मानित बना रहता है। इसी प्रकार आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण ही डा0 प्राण और तारा विवाह कर पाते हैं। लेखक ने आर्थिक विपन्नता को ही शोषण का मूल माना है। जिसके समाप्त होते ही एक प्राणी इस शोषण से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जब तक उपन्यास के नारी-पात्र सीता, कनक, तारा तथा अन्य स्त्रियां आर्थिक रूप से पराश्रिता बनी रहती हैं तब तक वह स्वतंत्र नहीं हो पाती। लेकिन जब वह अपने पैरों पर खड़ी हो जाती हैं तब ही वे अपनी इच्छानुसार जीवन में कार्य करने लगती हैं।

लेखक ने उपन्यास में मजदूरों द्वारा क्रांति करवाई है और इसके माध्यम से वर्ग-संघर्ष की सफलता प्रतिपादित की है। लेखक क्रांति द्वारा आर्थिक विषमता को समाप्त करने पर बल देता है तथा जनता की शक्ति पर विश्वास रखता है। उपन्यास के अंत में कांग्रेसी नेता सूद के हार जाने पर गिल को डा0 प्राण कहते हैं, "गिल, विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है, जनता सदा मूक भी नहीं रहती, देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के हाथ में है[1]।" इस से यशपाल जनता की प्रभुसत्ता स्थापित हो जाने का विश्वास रखते हैं। वर्तमान सामाजिक ढांचे में पूर्णतया परिवर्तन लाने का प्रयत्न हम 'झूठा सच' में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। पहले प्रेम—विवाह समाज द्वारा अच्छी नजरों से नहीं देखा जाता लेकिन इस उपन्यास में इसका समर्थन पाया जाता है। गिल व्यावहारिक प्रेम का समर्थन करता है। प्रेम के साथ स्वच्छन्द भोग का भी समर्थन करता है। डा0 श्यामा भी सेक्स संबंधों के विषय में कहती है कि विवाहित और अविवाहितों के लिये इनमें कोई भिन्नता नहीं मानी जानी चाहिये। जुबेदा और नरेन्द्र, कनक और पुरी, कनक और गिल, तारा और डा0 प्राण के माध्यम से स्वतंत्र यौन संबंधों पर बल दिया गया है। दाम्पत्य जीवन के खंडित होने का भी चित्रण मिलता है। तारा का सोमराज को त्यागना व बाद में डा0 प्राण से विवाह कर लेना तथा कनक का पुरी को त्याग कर गिल से संबंध स्थापित करना इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

धर्म के प्रति अविश्वास तथा भाग्य पर व्यंग्य-प्रहार भी उपन्यास में किया गया है। जब तारा, सतवन्त, बंतो तथा अन्य स्त्रियां मुसलमानों द्वारा अत्याचार सहन करते हुए ईश्वर पर अपना विश्वास प्रकट करती हैं जो ईश्वर उनकी सहायता के लिये असमर्थ हो, उन्हें भुला चुका होता है। भाग्यवादिता का खंडन यशपाल इस प्रकार करते हैं, "वे भाग्य को अंगूठा दिखाकर हंस रहे थे, भाग्य उन्हें कुचल नहीं सका। वे चिन्ता करके थक गए थे। अब उन्हें किसी

1. झूठा सच : भाग 2, देश का भविष्य, पृ0 709

बात की चिन्ता न थी[1]।" इस प्रकार के तथा अन्य प्रकार के व्यंग्य-प्रहार हमें उपन्यास में स्थान स्थान पर देखन को मिलते हैं साथ ही व्यंग्य द्वारा झूठा सच पर प्रकाश डाला गया है जो उपन्यास के नामकरण की सार्थकता को सामने लाता है। लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार इस उपन्यास का नामकरण बहुत सार्थक इसलिये है कि इसमें जो कुछ हम कल्पना नहीं कर पाते, वही सच है और जिसकी सत्यता हम निरन्तर प्रमाणित करते रहते है, वही झूट साबित होता है[2] उपन्यास में नैयर तारा को झूठ-सच की व्याख्या कर समझाता है—"घटना, तो झूट-सच नहीं होती, झूठ-सच तो घटना को प्रकट करने के प्रयोजन में होता है। मूल सत्य को प्रकट करने के लिये प्रयत्न करना या उसे जगाना भी आवश्यक हो जाता है। सच को बल देने के लिये साक्षी आवश्यक होती है[3] इस संबंध में डा0 मनमोहन सहगल[4] का मत भी उद्धृत किया जा सकता है—"1942 ई0 से 1952 तक की घटनाओं को झूठा-सच का आधार माना गया है इनमें से सर्वप्रमुख घटना है—1947 का भारत। विभाजन की घटनायें सत्य, एकदम सत्य होने पर भी कई बार ऐसा लगता है कि वे ऐसी नहीं हो सकतीं, वे अघटित हैं। वे अविश्वसनीय हैं। ऐसी ही घटित घटना सत्य घटना पर अपूर्व एवं अविश्वसनीय घटना को झूटा-सच कहा जा सकता है क्योंकि आने वाली पीढ़ियों को, सत्य होते हुए भी ये घटनायें अविश्वसनीय प्रतीक होंगी"। एक और विवरण जो झूठा-सच उपन्यास में तारा से संबंधित है। वह यह, कि वह समाज के सामने सोमराज की पत्नी है जो सत्य होते हुये भी झूठ है।

'झूठा-सच' उपन्यास में एक मुख्य कथा के साथ अन्य सहायक कथाएं भी साथ साथ चलती हैं। पुरी और तारा की मुख्य कथा के साथ साथ अन्य गौण कथायें चलती हैं। उपन्यास। लगभग सौ पात्र हैं। पुरी के चरित्र में परिस्थितियों के साथ-साथ मोड़ दिखाये गये हैं। पुरी के व्यक्तित्व के संबंध में डा0 इन्द्रनाथ मदान का कहना है, "पुरी का व्यक्तित्व सरल न होकर जटिल है, विसंगतियों का पुंज है और लेखक की सहानुभति से वंचित रह जाता है। इनकी सहानुभूति या तो नारी से है या साम्यवादी एवं उदार विचारों के पुरुष से"।[5] पुरी की हीन भावना और संशयालु हृदय उसे जीवन भर सुखी रहने से वंचित करते है। डा0 प्रभास चन्द शर्मा 'मेहता' पुरी के चरित्र से संबंधित यह विचार रखते हैं—"वस्तुतः पुरी एक निर्बल स्नायु, पुष्ट मानस, आचार-निष्ठा-विहीन पुरुष है जो हर समय दिन-रात परिश्रमरत कनक का तिरस्कार करता रहता है। विधवा उर्मिला के साथ उसके द्वारा स्थापित अवैध संबंध भी उसकी इस चारित्रिक दुर्बलता का परिचायक हैं"।[6]

तारा एक रूपवती और सुशिक्षित युवती है जिसका रूप यौवन और शिक्षा ही उसके लिये अभिशाप साबित होता है। इसी प्रकार कनक विचित्र संस्कारों से युक्त है। वह एक ओर देश-भक्त उदार, साहित्य प्रेमी है तथा दूसरी ओर अत्यंत भावुक है। प्रेम जीवन में विचित्रता इसी भावुकता का परिणाम है उसे आधुनिक नारी के प्रतीक रूप में चित्रित करने के लिये निर्भय और स्वतंत्र विचारों की पोषिता के रूप में दि खाया गया है। इसी प्रकार अन्य पात्रों का भी सजीव चित्रण उपन्यास में देखने को मिलता है।

1. झूठा-सच-देश का भविष्य, पृ0 122
2. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियां—डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ0 83
3. झूठा-सच—भाग 2 (तीसरा संस्करण) पृ0 655।
4. हिन्दी उपन्यास के पद चिन्ह-पृ0 298
5. आज का हिन्दी उपन्यास-इन्द्रनाथ मदान, पृ0 83
6. प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास-डा0 प्रभासचंद शर्मा मेहता, पृ0 45

कांग्रेसी नेताओं की स्वार्थ-नीति की आलोचना आलोचनात्मक कथोपकथनों द्वारा की गई है। उपन्यास परिस्थिति प्रधान है। डा0 शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार "यशपाल को तद्युगीन वातावरण के चित्रण में बड़ी सफलता मिली है। सामान्य पारिवारिक परिस्थितियों एवं संबंधों से लेकर राजनैतिक परिस्थितियों आदि के चित्र यथार्थ एवं विश्वसनीय हो उठे हैं।" भारत के उत्थान-पतन की घटनाओं को त्वरित गति से परस्पर संबद्ध किया गया है। साथ साथ में नाटकीय घटनाओं का भी आयोजन किया गया है। सारे उपन्यास में हिंसात्मक घटनाओं का वर्णन बार बार दोहराया गया है और अंत में उज्जवल भविष्य की ओर संकेत दिया गया है।

यशपाल ने उपन्यास में वर्णन—प्रधान और चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। उपमाओं का भी प्रचुर मात्रा में योग किया गया है। पात्रों के मुख से स्थानीय बोली के शब्दों का प्रयोग करवाया गया है। वैसे पंजाबी शब्द उपन्यास में काफी प्रयोग में लाये गये हैं। उच्च मध्यवर्गीय लोगों के मुख से अंग्रेजी का प्रयोग करवाया गया है। डा0 शशिभूषण सिंहल ने भी शिल्प के विषय में लिखा है—"झूठा-सच के शिल्प का जहां तक सवाल है, इसमें कोई शक नहीं कि यहां यशपाल ने एक विशाल चित्रफलक का निर्माण किया है और पूरा एक युग, जो हमारे इतिहास का सर्वाधिक संक्रांतिकालीन युग है, संजीवन एवं मूर्तिमान करने में कोई कसर शेष नहीं रखी है। उनका कैमरा गलियों, तंग कोठरियों, शहरों, बदनाम अड्डों, व्यक्तियों और शिविरों तक इतनी तेजी से घूमता है कि सारा दृष्य हमारे सामने साकार हो उठता है।[1]"

कथानक को सुसम्बद्धता, पात्रों की सजीवता, वातावरण प्रधानता तथा नामकरण की सार्थकता आदि सब दृष्टियों से उपन्यास का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि 'झूठा-सच' उपन्यास एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। यह उपन्यास यशपाल की कला को शीर्ष बिन्दु में पहुंचाते हुए हिन्दी उपन्यास साहित्य के लिये भी एक अमूल्य रत्न है।

—हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-5।

1. हिन्दी उपन्यास-प्रेमचन्दोत्तर युग—प्रयोगकाल

भूंपल (हमीरपुर) में दिनांक ३ दिसम्बर, १९७७ को हिमाचल सरकार द्वारा आयोजित राज्य स्तरीय समारोह में प्रमुख वक्ताओं द्वारा दिए गए भाषणों के अंश—

श्री दौलत राम चौहान, शिक्षा मन्त्री, हि० प्र०

स्वागत भाषण

मातृतुल्य श्रीमती यशपाल प्रकाशवती जी, श्रीमती इन्द्रपाल जी, क्रांतिकारियों में अग्रणी **श्री** मन्मथनाथ जी गुप्त, डा0 प्रभाकर माचवे, परमादरणीय मुख्य मन्त्री जी,.......भूंपल की मातृशक्ति ! बुजुर्गो ! भाइयो तथा प्यारे **बच्चो** ! मुझे सब से पूर्व इस धरती को प्रणाम करना है जिसने यशपाल और इन्द्रपाल जैसे क्रांतिकारियों को जन्म दिया । वैसे तो कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर वह धरती है कि जो अपने प्रदेश में से सैनिक तैयार करके देश पर आहूत करती है परन्तु जहां स्वतन्त्रता संग्राम में बापू जी के आशीर्वाद से यहां के निवासियों ने नाना प्रकार से संघर्ष किया है वहां पर स्वतन्त्रता के क्षेत्र में क्रांतिकारियों ने जो भूमिका निभाई है, उसमें भी हिमाचल क्षेत्र पीछे नहीं रहा है, और यह श्रेय आप लोगों को जाता है । इस धरती को मेरा बार बार प्रणाम है। मैं हिमाचल प्रदेश, हिमाचल कला संस्कृति और भाषा विभाग एवं अकादमी की ओर से आप सब लोगों का हार्दिक स्वागत करता हूं । स्वागत का यह ऐसा **अवसर** है कि जब स्वर्गीय यशपाल जी जिन्होंने अनेक क्षेत्रों में काम किया, क्रांतिकारी तो वो थे ही मगर उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, जिन अभावग्रस्थ स्थितियों में अपना जीवन व्यतीत किया, उनसे उन्हें एक नया चिन्तन प्राप्त हुआ । वह नया चिन्तन था—साम्यवाद का, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का। परन्तु जहां साम्यवाद दाल रोटी से शुरु हो कर के दाल रोटी पर ही समाप्त होता है, वहां पर **उस** वीर ने भारतीयता व नैतिकता का समावेश उसमें किया है। यह एक नई विधा है जिसके कारण उनका जीवन दो तत्वचिन्तनों के आधार पर खड़ा हुआ है, और फिर साहित्य में जितनी प्रकार की विधायें होती हैं, साहित्य में उपन्यास है, कहानी हैं, संस्मरण हैं, नाटक है और इस प्रकार के जीवन के अन्य अंगों को लिखा जा सकता हैं, निबन्ध है, इन सभी विधाओं को ले कर यशपाल जी ने जो साहित्य लिखा, उस लेखक क्रान्तिकरी की जयन्ती मनाने के अवसर पर हम इकट्ठे हुए हैं और उस पर हमें जिन क्रांतिकारियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है वे हैं क्रांतिकारियों में अग्रणी डा0 मन्मथनाथ गुप्त। वे आज की सभा की अध्यक्षता करेंगे और साथ में हमें आशीर्वाद प्राप्त हुआ है डा0 प्रभाकर माचवे जी का। वे जहां प्रकाण्ड विद्वान हैं वहां साथ ही लेखक भी हैं । और सब से बड़ी बात यह कहना चाहूंगा कि इन क्रांतिकारियों ने जहां क्रांति की चिन्गारी से देश को आज़ाद करने का प्रयत्न किया है वहां साहित्य से उस क्रांति की चिन्गारी को शाश्वत करते हुए देश के हित के लिये हमेशा के लिये प्रज्वलित रखा है।

इस समय मैं इन सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और निवेदन करुंगा डा0 मन्मथनाथ गुप्त जी से कि वे आज के इस समारोह की अध्यक्षता करें और हमारा मार्गदर्शन करें।

इसके साथ ही निदेशक, लोकसम्पर्क हिमाचल प्रदेश सरकार के द्वारा हमने हिमप्रस्थ का यशपाल विशेषांक प्रकाशित किया है उसकी एक एक प्रति आए हुए मुख्य अतिथि, सम्माननीय अतिथियोंव अभ्यागतगणों को भेंट करुंगा। धन्यवाद ।

श्री शान्ता कुमार जी, मुख्य मन्त्री, हि० प्र० के भाषण के अंश

परमादणीय श्रीमती प्रकाशवती जी, उनके परिवार के आये हुए माननीय सदस्यगण, आदरणीय श्री मन्मथ नाथ गुप्त जी, आदरणीय श्री माचवे जी, अध्यक्ष विधान सभा, भाई चौहान जी, विधानसभा सदस्यगण, भाइयो बहिनों और बच्चो ! मैं आज सब से पहले आपको बधाई देता हूं । इस गांव के लोगों को, इस इलाके की जनता को । आप सचमुच बधाई के पात्र हैं । आप इस बात पर फ़खर कर सकते हैं, गर्व कर सकते हैं कि यही वह भूमि है जहां एक परिवार में यशपाल ने जन्म लिया । जो यशपाल आज केवल किसी एक गांव या प्रदेश का नहीं है, जो यशपाल सारे विश्व, सारे भारत का है। इस महान गौरव के लिये, जैसा भाई चौहान जी ने कहा, मैं भी इस धरती को प्रणाम करता हूं जिस धरती ने इतना महान क्रांतिकारी, इतना महान लेखक पैदा किया था । अभी जब मैं यहां बैठा था और जब से मैं यहां आया हूं, मेरी आंखें तो आपको देख रही हैं पर मेरे मन की आंख बहुत दूर जा पहुंची है।

मैंने क्रांतिकारी इतिहास को केवल सुना है, मुझे इतिहास की वह घटना याद आई। घटना को याद करके मैं रोमांचित हो उठता हूं । मुझे मालूम है दुनियां के इतिहास में शायद ही इस प्रकार की घटना कभी घटी हो, आइए, मैं आपको भी उस घटना की तरफ़ ले चलता हूं। शायद बरेली सैन्ट्रल जेल का दृष्य है—आज से इकतालीस वर्ष पहले की बात है । अंग्रेज का इस देश पर शासन था । बरेली सैन्ट्रल जेल के एक छोटे से कमरे में यशपाल जी को 14 साल की कैद हुई है। जेल के बाहर सुपरिटेन्डेन्ट बैठा है। वहां पर एक नवयुवती आती है—सुपरिटेन्डेन्ट से कहती है— कि इस जेल में जो नवयुवक बन्द है मैं उससे शादी करना चाहती हूं । उस समय के नियम बहुत कठोर नहीं होंगे, शायद मानवता का नियम तब रहा होगा, और फिर जेल के सुपरिटेन्डेन्ट कुछ इधर उधर की बातें करने के बाद उस नौजवान को बुलाते हैं । जेल की कोठरी से एक नौजवान बाहिर आता है और वह नवयुवती आती है, सुपरिटेन्डेन्ट के कमरे में बैठती है—वहीं पर उन दोनों की शादी होती है, कोई ढोल नहीं बजते, कोई जश्न नहीं होता और ज्यों ही वह शादी खत्म होती है शादी करने के बाद वह दुल्हन सड़क की ओर चली जाती है और वह दूल्हा फिर से जेल की कोठरी में जाकर बन्द हो जाता है। यह दूल्हा वही हमारे यशपाल थे। वही आदरणीया प्रकाशवती जी हमारे बीच बैठी हैं। मुझे मालूम नहीं है दुनियां के इतिहास में कभी इस प्रकार का विवाह हुआ होगा । सोचता हूं कई बार कि उस समय यशपाल जी के हृदय में कौन सी भावनायें उमड़ी होंगी और उस समय जबकि शादी करने के बाद जब कैदी जेल की तरफ चला गया और वह जेल से बाहिर चली गई तब उनके दिलों की धड़कनें किस तरह धड़की होंगी। मन में क्या बात आई होगी । मैं आप सब लोगों से कहना चाहता हूं आज हम आज़ादी के आज़ाद वातावरण में सांस लेते हैं। हम जो चाहते हैं, देख सकते हैं। आज इस देश पर हमारी हकूमत है, हमारा राज है, हम लिख सकते हैं, बोल सकते हैं, अपनी मरजी के मुताबिक अपनी सरकार चला सकते हैं लेकिन इस बात को हरगिज नहीं भूलिये कि आज़ादी को लेने के लिये इस देश के हज़ारों लाखों नौजवानों ने अपनी जवानी का खून बहाया है और मैं कई बार सोचता हूं कि हम इस बात को भूल जाते हैं कि जो इस नींव के पत्थर थे वे चले गये । आज का यह प्रसंग, मैं समझता हूं प्रदेश का ही नहीं, मेरे जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य भी है । बहुत **बड़ी ख्याति** इस हिमाचल प्रदेश के उस महान क्रांतिकारी के प्रति श्रद्धा से किसी तरीके से चलाई जाये । मुझे 10 साल

यशपाल जयन्ती समारोह

भूंपल (हमीरपुर) में दिनांक ३ दिसम्बर, १९७७ को हिमाचल सरकार द्वारा आयोजित राज्य स्तरीय समारोह में प्रमुख वक्ताओं द्वारा दिए गए भाषणों के अंश—

श्री दौलत राम चौहान, शिक्षा मन्त्री, हि० प्र०

स्वागत भाषण

मातृतुल्य श्रीमती यशपाल प्रकाशवती जी, श्रीमती इन्द्रपाल जी, क्रांतिकारियों में अग्रणी श्री मन्मथनाथ जी गुप्त, डा0 प्रभाकर माचवे, परमादरणीय मुख्य मन्त्री जी,.......भूंपल की मातृशक्ति ! बुजुर्गों ! भाइयो तथा प्यारे बच्चो ! मुझे सब से पूर्व इस धरती को प्रणाम करना है जिसने यशपाल और इन्द्रपाल जैसे क्रांतिकारियों को जन्म दिया । वैसे तो कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर वह धरती है कि जो अपने प्रदेश में से सैनिक तैयार करके देश पर आहूत करती है परन्तु जहां स्वतन्त्रता संग्राम में बापू जी के आशीर्वाद से यहां के निवासियों ने नाना प्रकार से संघर्ष किया है वहां पर स्वतन्त्रता के क्षेत्र में क्रांतिकारियों ने जो भूमिका निभाई है, उसमें भी हिमाचल क्षेत्र पीछे नहीं रहा है, और यह श्रेय आप लोगों को जाता है । इस धरती को मेरा बार बार प्रणाम है। मैं हिमाचल प्रदेश, हिमाचल कला संस्कृति और भाषा विभाग एवं अकादमी की ओर से आप सब लोगों का हार्दिक स्वागत करता हूं । स्वागत का यह ऐसा अवसर है कि जब स्वर्गीय यशपाल जी जिन्होंने अनेक क्षेत्रों में काम किया, क्रांतिकारी तो वो थे ही मगर उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, जिन अभावग्रस्थ स्थितियों में अपना जीवन व्यतीत किया, उनसे उन्हें एक नया चिन्तन प्राप्त हुआ । वह नया चिन्तन था—साम्यवाद का, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का। परन्तु जहां साम्यवाद दाल रोटी से शुरु हो कर के दाल रोटी पर ही समाप्त होता है, वहां पर उस वीर ने भारतीयता व नैतिकता का समावेश उसमें किया है। यह एक नई विधा है जिसके कारण उनका जीवन दो तत्वचिन्तनों के आधार पर खड़ा हुआ है, और फिर साहित्य में जितनी प्रकार की विधायें होती हैं, साहित्य में उपन्यास है, कहानी हैं, संस्मरण हैं, नाटक है और इस प्रकार के जीवन के अन्य अंगों को लिखा जा सकता हैं, निबन्ध है, इन सभी विधाओं को ले कर यशपाल जी ने जो साहित्य लिखा, उस लेखक क्रान्तिकरी की जयन्ती मनाने के अवसर पर हम इकट्ठे हुए हैं और उस पर हमें जिन क्रांतिकारियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ है वे हैं क्रांतिकारियों में अग्रणी डा0 मन्मथनाथ गुप्त। वे आज की सभा की अध्यक्षता करेंगे और साथ में हमें आशीर्वाद प्राप्त हुआ है डा0 प्रभाकर माचवे जी का। वे जहां प्रकाण्ड विद्वान हैं वहां साथ ही लेखक भी हैं । और सब से बड़ी बात यह कहना चाहूंगा कि इन क्रांतिकारियों ने जहां क्रांति की चिन्गारी से देश को आज़ाद करने का प्रयत्न किया है वहां साहित्य से उस क्रांति की चिन्गारी को शाश्वत करते हुए देश के हित के लिये हमेशा के लिये प्रज्वलित रखा है।

इस समय मैं इन सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और निवेदन करुंगा डा0 मन्मथनाथ गुप्त जी से कि वे आज के इस समारोह की अध्यक्षता करें और हमारा मार्गदर्शन करें।

इसके साथ ही निदेशक, लोकसम्पर्क हिमाचल प्रदेश सरकार के द्वारा हमने हिमप्रस्थ का यशपाल विशेषांक प्रकाशित किया है उसकी एक एक प्रति आए हुए मुख्य अतिथि, सम्माननीय अतिथियोंव अभ्यागतगणों को भेंट करुंगा। धन्यवाद ।

श्री शान्ता कुमार जी, मुख्य मन्त्री, हि० प्र० के भाषण के अंश

परमादणीय श्रीमती प्रकाशवती जी, उनके परिवार के आये हुए माननीय सदस्यगण, आदरणीय श्री मन्मथ नाथ गुप्त जी, आदरणीय श्री माचवे जी, अध्यक्ष विधान सभा, भाई चौहान जी, विधानसभा सदस्यगण, भाइयो बहिनों और बच्चो ! मैं आज सब से पहले आपको बधाई देना हूं । इस गांव के लोगों को, इस इलाके की जनता को । आप सचमुच बधाई के पात्र हैं । आप इस बात पर फ़ख्र कर सकते हैं, गर्व कर सकते हैं कि यही वह भूमि है जहां एक परिवार में यशपाल ने जन्म लिया । जो यशपाल आज केवल किसी एक गांव या प्रदेश का नहीं है, जो यशपाल सारे विश्व, सारे भारत का है। इस महान गौरव के लिये, जैसा भाई चौहान जी ने कहा, मैं भी इस धरती को प्रणाम करता हूं जिस धरती ने इतना महान क्रांतिकारी, इतना महान लेखक पैदा किया था । अभी जब मैं यहां बैठा था और जब से मैं यहां आया हूं, मेरी आंखें तो आपको देख रही हैं पर मेरे मन की आंख बहुत दूर जा पहुंची है।

मैंने क्रांतिकारी इतिहास को केवल सुना है, मुझे इतिहास की वह घटना याद आई। घटना को याद करके मैं रोमांचित हो उठता हूं । मुझे मालूम है दुनियां के इतिहास में शायद ही इस प्रकार की घटना कभी घटी हो, आइए, मैं आपको भी उस घटना की तरफ़ ले चलता हूं। शायद बरेली सैन्ट्रल जेल का दृष्य है—आज से इकतालीस वर्ष पहले की बात है । अंग्रेज़ का इस देश पर शासन था । बरेली सैन्ट्रल जेल के एक छोटे से कमरे में यशपाल जी को 14 साल की कैद हुई है । जेल के बाहर सुपरिटेन्डेन्ट बैठा है। वहां पर एक नवयुवती आती है—सुपरिंटेन्डेन्ट से कहती है— कि इस जेल में जो नवयुवक बन्द है मैं उससे शादी करना चाहती हूं । उस समय के नियम बहुत कठोर नहीं होंगे, शायद मानवता का नियम तब रहा होगा, और फिर जेल के सुपरिंटेन्डेन्ट कुछ इधर उधर की बातें करने के बाद उस नौजवान को बुलाते हैं । जेल की कोठरी से एक नौजवान बाहिर आता है और वह नवयुवती आती है, सुपरिंटेन्डेन्ट के कमरे में बैठती है—वहीं पर उन दोनों की शादी होती है, कोई ढोल नहीं बजते, कोई जश्न नहीं होता और ज्यों ही वह शादी खत्म होती है शादी करने के बाद वह दुल्हन सड़क की ओर चली जाती है और वह दूल्हा फिर से जेल की कोठरी में जाकर बन्द हो जाता है। यह दूल्हा वही हमारे यशपाल थे। वही आदरणीय प्रकाशवती जी हमारे बीच बैठी हैं। मुझे मालूम नहीं है दुनियां के इतिहास में कभी इस प्रकार का विवाह हुआ होगा । सोचता हूं कई बार कि उस समय यशपाल जी के हृदय में कौन सी भावनायें उमड़ी होंगी और उस समय जबकि शादी करने के बाद जब कैदी जेल की तरफ चला गया और वह जेल से बाहिर चली गई तब उनके दिलों की धड़कनें किस तरह धड़की होंगी। मन में क्या बात आई होगी । मैं आप सब लोगों से कहना चाहता हूं आज हम आज़ादी के आज़ाद वातावरण में सांस लेते हैं। हम जो चाहते हैं, देख सकते हैं। आज इस देश पर हमारी हकूमत है, हमारा राज है, हम लिख सकते हैं, बोल सकते हैं, अपनी मरज़ी के मुताबिक अपनी सरकार चला सकते हैं लेकिन इस बात को हरगिज नहीं भूलिये कि आज़ादी को लेने के लिये इस देश के हज़ारों लाखों नौजवानों ने अपनी जवानी का खून बहाया है और मैं कई बार सोचता हूं कि हम इस बात को भूल जाते हैं कि जो इस नींव के पत्थर थे वे चले गये । आज का यह प्रसंग, मैं समझता हूं प्रदेश का ही नहीं, मेरे जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य भी है । बहुत बड़ी ख्याति इस हिमाचल प्रदेश के उस महान क्रांतिकारी के प्रति श्रद्धा से किसी तरीके से चलाई जाये । मुझे 10 साल

आया तो मैंने और कुछ मित्रों ने
पहले की वह घटना याद है जब जिला परिषद् कांगड़ा का भार मुझ पर आया तो मैंने और कुछ मित्रों ने जाये। हमने ज़िला परिषद् की तरफ़
सोचा कि हमारे प्रान्त के महान क्रांतिकारी जहां रहते हैं, उन्हें बुलाया जाये। हमने ज़िला परिषद् की तरफ़
से निमन्त्रण भेजा और मुझे याद है कि हमारे पहले ही पत्र के बाद यशपाल जी का जवाब आया था। उन्होंने
लिखा था,— आपका पत्र मिलते ही यद्यपि मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता तो भी मैं अपने इस कांगड़ा को देखने
के लिये छटपटा रहा हूं। वह आये, प्रकाशवती जी भी उनके साथ थीं और वे हमारे कांगड़ा शहर में भी पधारे।
तब मुझे कुछ समय उनके साथ इकट्ठे रहने का सौभाग्य मिला था। उसके बाद हमारी सरकार आई और हमने
इस बारे में विचार किया सब सहयोगियों के साथ, हमने सोचा कि यशपाल जी के सम्बन्ध में हमें भी ऐसा
स्मारक सोचना चाहिए जिससे उनकी याद उनके अपने क्षेत्र के अन्दर चिरस्थायी हो सके। उसके लिये हमने
एक कमेटी बनाई और उस कमेटी में सबसे पहला विचार यह किया कि इस वर्ष यशपाल जी की
जयन्ती उनके अपने गांव में मनाई जाए। सरकार की उसी कमेटी के उस निर्णय के बाद आज हम सब
यहां पर इकट्ठे हैं यह और भी सौभाग्य की बात है कि आज का यह प्रसंग बहुत बड़ा ऐतिहासिक प्रसंग
है, जहां पर इस समय श्री यशपाल जी की धर्म पत्नी जी बैठी हैं जो कि केवल उनकी धर्मपत्नी ही नहीं थी,
आज बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि अपने बचपन के दिनों में यही प्रकाशवती जी बन्दूक और पिस्तौल
के साथ भी खेला करती थीं। तब अंग्रेज़ की हकूमत थी और अंग्रेज़ की हकूमत के अन्दर आज़ादी की बात करना
मानों जेल जाना था। उस समय की बात चीत बहुत दूर की बात थी तब भी श्रीमती प्रकाश वती जी अपना
घर छोड़कर क्रान्तिकारियों के साथ कदम से कदम मिला कर के आगे बढ़ी हैं। आज भी यहां पर उपस्थित
हैं मैं इसमें अपना बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूं। उन श्री इन्द्र पाल जी ने तथा यशपाल जी
ने मिलकर क्रान्तिकारी इतिहास में जो काम किया है वह इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है, वहीं श्री इन्द्रपाल
जी की धर्मपत्नी भी आज यहां उपस्थित हैं और इनके साथ ही श्री मन्मथ नाथ जी जो भारत के एक महान
क्रान्तिकारी हैं, आज आपको उनका बूढ़ा शरीर जो दिखाई दे रहा है, आज इस कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे
हैं। आप कल्पना नहीं कर सकते कि जवानी के दिनों में श्री मन्मथ नाथ तथा इनके साथियों ने
हिन्दुस्तान में वह काम किया था जिससे आधी दुनियां पर हकूमत करने वाला अंग्रेज़ कांप गया था, थरथरा गया
था। वह प्रसिद्ध काकुरी काण्ड जिसमें कितने ही लोगों को फ़ांसी हुई और बहुत से लोग आजीवन कारावास में
गए थे, श्री मन्मथ नाथ जी उसी काण्ड के हीरो हैं। और उसके बाद जिन्दगी के कितने वर्ष उन्होंने जेल में
व्यतीत किए और उसके बाद क्रान्तिकारी इतिहास को लिखने का काम किया और फिर यशपाल जी के एक और
साथी श्री माचवे जी जिनका अपनी साहित्यिक दृष्टि से सम्पर्क इनके साथ रहा है। मैं समझता हूं कि
आज का प्रसंग बड़े आनन्द का प्रसंग है बड़ा ऐतिहासिक प्रसंग है कि अपने इस स्थान पर जिस धरती ने अपने
उस लाल को जन्म दिया था। उस धरती पर जहां उनकी धर्मपत्नी तथा उनके परिवार के लोग जहां पर बैठे हैं
वहां उनके साथ जिन्होंने काम किया वह महान् क्रान्तिकारी भी वहां उपस्थित हैं। आज एक बात कहने के
लिए मेरा दिल कर रहा है। मुझे इस बात की प्रसन्नता हो रही है, मुझे इस बात का गौरव है कि हम
अपने इस धरती के उस बालक लाल को याद करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। वहां न जाने क्यों इस
दिल के कोने के अन्दर एक टीस सी लीक मार जाती है और वह टीस यह है, वह दर्द यह है कि
यशपाल जी का स्मारक बनाने और यशपाल जी को याद करने के लिए आज़ादी के बाद हमें पूरे तीस साल
लग गए। हम तीस साल के बाद उनकी याद कर रहे हैं। मैं समझता हूं इसके लिए कोई भी क्यों न दोषी
हो, हमें आगे के लिए याद रखना होगा कि जो कौम, जो देश अपने शहीदों को याद नहीं करती, उस कौम को
कौम कहलाने का हक नहीं होता।

15 अगस्त, 1947 को जब अंग्रेज़ चला गया और फिर 1977 तक हम यशपाल जी की याद नहीं
कर सकें। हमें चाहिए था कि हम उनकी याद करते। हमें चाहिए था कि हम उनका स्मारक बनाने की पहले
चिन्ता करते। जहां तक देश के शहीदों का सवाल होता है, हमें छोटी छोटी बातों पर सोचना पड़ता है। देश
का शहीद देश का होता है उसका विचार कुछ भी हो सकता है। लेकिन जिसने देश की आज़ादी के लिए खून दिया
है, वह सारे देश का होता है, सारे समाज का होता है। मुझे इस बात की प्रसन्नता हुई कि पूरे
हिमाचल प्रदेश ने उस महान यशस्वी क्रान्तिकारी लेखक के जीवन के प्रति सोचने का प्रण किया है। मुझे यह लगता
है कि भारत के इतिहास को समझने में बहुत बड़ी गलती हुई है। यह सब मुझे दु:ख से कहना पड़ता है
कि पिछले कुछ सालों में यह कोशिश हुई है और जानबूझ कर यह कोशिश की गई है,
गलत इतिहास पढ़ाया गया। इतिहास में यह गलत कहा गया कि हमने खून का कतरा बहाये बिना आज़ादी ली।
आज जब मैं किसी देश के बड़े नेता को किसी बड़े मंच पर खड़े हुए यह सब कहते हुए सुनता था तो मुझे लगता
था इससे बड़ा झूठ और कोई नहीं है, इतिहास का इससे बड़ा बलात्कार और कोई नहीं हो सकता। मैं यह
पूछना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान कभी खून का कतरा बहाये बिना आज़ाद हुआ है। यह झूठ है। तब मैं यह पूछना
चाहता हूं कि 23 वर्ष की विधवा झांसी की रानी 1857 के अन्दर जब दोनों हाथों में तलवार लेकर निकली थी
जब राजा गंगादास की झोपड़ी के आगे रानी झांसी का शरीर गिरा था, उस समय हजारों लोग देश के लिए
मरे, क्या उनके शरीर से खून नहीं गिरा। क्या उसको खून कहना नहीं चाहते, क्या उसको पानी समझते हैं।
यह बहुत बड़ा झूठ था, जिसे देश में कहा गया, प्रचारित किया गया, पुस्तकों में लिखा गया। मुझे लगता है, बहुत
गलती हुई है और मैं समझता हूं कि नई सरकार का सबसे बड़ा यह काम था कि उस पाप का हम प्रायश्चित
करें। हमने पाप किया है, देश के शहीदों को पर्दे के पीछे डालने की कोशिश की है। इस देश को आज़ाद कराने में बहुत
सी ताकतों का हिस्सा था, कुछ लोग हिंसा की बात लेकर चले।

कुछ लोग अहिंसा की बात लेकर के चले। कुछ लोगों ने प्रस्ताव पास किए। कुछ लोगों ने गोलियों
के धमाके किए। यह सब की मिली जुली कोशिशों का नतीजा है। हम यह नहीं कह सकते कि
जो हिंसा करते थे, देश उन्हीं के कारण आज़ाद हुआ। जो अहिंसा की बात सोचते थे उन्हीं के कारण
आज़ाद हुआ। मैं तो यह समझता हूं कि सबसे बड़ा धक्का अंग्रेज़ को दिया है वह क्रान्तिकारियों
ने दिया है। मैंने इतिहास पढ़ा है। आपने भी इतिहास देखा है। 1942 के अन्दर आज़ाद हिन्द फ़ौज
का वह बहुत बड़ा कारनामा हुआ जब सुभाष चन्द्र बोस विदेशों में गए और बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की। सारे
देश के अन्दर, सारी दुनियां के अन्दर जनमत इकट्ठा हुआ, आप इतिहास को देखें। 1942 के बाद 1947 तक
हिन्दुस्तान में, पांच सालों में कोई बड़ा आन्दोलन नहीं हुआ। मेरा यह निष्कर्ष है भारत को आज़ाद करने के लिए
आखिरी कारनामा जिस फ़ौज का है तो वह आजाद हिन्द फौज है और वह क्रान्तिकारी कारनामा है। इतिहास
इस बात का साक्षी है कि जब लंदन की पालियामेंट में भारत को आज़ादी देने का दिन आया था तो विरोधी
दल के एक बड़े नेता ने खड़े होकर एक सवाल किया था, उस समय के प्रधान मन्त्री से, 'आज कौन सा कारण
है कि भारत को आजाद किया जा रहा है। हम हिन्दुस्तान को क्यों छोड़ रहे हैं। इण्डियन इण्डिपैन्डेंस ऐक्ट क्यों
आ रहा है'? तो बिट्रेन के प्रधान मन्त्री जी ने जवाब दिया था कि हिन्दुस्तान की वह फौज जिसके सहारे हम हिन्दु-
स्तान पर हकूमत करते थे आज वह हमारे हाथों से निकल चुकी है। क्रान्तिकारी भावना समा चुकी है। अब
हम भारत को अपने हाथों में नहीं रख सकते। अंग्रेज़ कभी भी हिन्दुस्तान को छोड़ कर नहीं जाता यदि हिन्दो-
स्तान के लोगों के दिलों के अन्दर क्रान्तिकारियों द्वारा फैलाया गया जज़्बा एक चिन्गारी और शोले का काम
नहीं करते। जो क्रान्तिकारियों ने बम चलाए, धमाके किए, पिस्तौल चलाई, लन्दन तक जाकर लोगों ने धमाके
किए, अंग्रेज़ का सिंहासन हिला। उससे जो देश में चेतना आई और उस चेतना को समेटने का काम और दूसरे,
चेतना को देश के अन्दर मूवमैन्ट बनाने का काम महात्मा गांधी ने किया। यह श्रेय महात्मा गांधी जी को जाता
है। देश में कई लहरें चलीं और सभी लहरें एक जगह आकर के बंट गई और 15 अगस्त, 1947 को भारत

आज़ाद हुआ। मैं यह समझता हूं कि देश को आज़ाद कराने में क्रान्तिकारियों का, शहीदों का, अहिंसावादियों का, सबका बराबर का हिस्सा है और यही सच्चा इतिहास है। आज चिन्ता इस बात की है कि हम इस इतिहास को समझें। मैंने जैसे प्रारम्भ में आपसे कहा कि हमने एक समिति बनाई है और उस समिति का काम यह है कि वह यह सोचे कि श्री यशपाल जी का स्मारक किस प्रकार का होना चाहिए ! सरकार चाहेगी कि वह समिति कोशिश करे कि यशपाल जी के जीवन के जो आदर्श थे उन आदर्शों को ध्यान में रखकर स्मारक बनाया जाए। यह सबसे पहला कार्यक्रम है जो उनकी याद में हम कर रहे हैं। समिति बैठेगी, विचार करेगी हम कुछ और लोगों से सलाह लेंगे। श्री मन्मथनाथ जी के साथ हम बैठेंगे हम उनसे भी सलाह लेंगे और भी आवश्यकता हुई तो हम क्रान्तिकरियों के पास जाएंगे। इनके अतिरिक्त अन्य सच्चे अर्थों में यशपाल जी का सच्चा स्मारक और क्या हो सकता है ! हिमाचल सरकार ऐसा स्मारक उनके नाम पर बनाएगी जो अपने आप में अद्वितीय होगा।

मैं, मौरिशिस के श्री नन्दलाल, जो हमारे बीच उपस्थित हैं, का स्वागत करता हूं। धन्यवाद !

डा० प्रभाकर माचवे का भाषण

श्रीमति प्रकाशवती जी, शान्ताकुमार जी, चौहान जी, भाइयो और बहनों ! इतने सुन्दर भाषण के बाद और कुछ कहने को नहीं रहा है और समय मैं आपका अधिक नहीं लेना चाहता। कल जब हम इस प्रान्त में आए तो श्री मन्मथनाथ गुप्त जी के साथ ज्वाला माई जी के दर्शन करने के लिए गए तो मन्मथ जी बोले कि यशपाल जी जो थे वह ज्वालामुख थे। और उनकी जो संगिनी है उनका नाम प्रकाशवती है और वह स्वयं ज्वाला माई हैं और यहां पर साक्षात् बैठी हुई हैं। जिस भूमि में धवलगिरी जैसा पर्वत हो, उस देवात्मा हिमालय की छाया में आप बैठे हैं। कालिदास ने कहा कि जो इसका दर्शन है वह अपने आप में पुण्य देने वाली चीज है। जिस प्रकार ओस के कण सवेरा आने पर प्रकाश से अपने आप मिट जाते हैं उसी प्रकार हिमालय के दर्शन से सारे पाप धुल जाते हैं।

ऐसे देवात्मा हिमालय और उसमें ज्वाला माई जागृति देवी के पास आप बैठे हैं। और उस भूमि के आप पाल हैं भोंपाल के रहने वाले हैं। उस भूमि के साहित्यकार की जयन्ती मनाने हम यहां आए हैं, उनके साहित्य के बारे में कितना और क्या कहा जाए। जैसा उनका नाम यशपाल था वह यशस्काय हो गए। मुख्य मन्त्री जी ने ठीक बात कही है कि वह हिमाचल के ही लेखक नहीं थे। वह सारे विश्व के लेखक थे। मैं जहां जहां भारत के बाहर गया वहां वहां यशपाल का नाम सुना। रूस देश में किसी भी हिन्दी लेखक की यदि प्रतियां अनुवाद की छपी हैं तो वह प्रेमचन्द और यशपाल जी की हैं। उनका सबसे बड़ा उपन्यास 'झूठा सच' जो भारत के विभाजन के ऊपर लिखा, जिस झूठे सच की चर्चा मुख्य मन्त्री ने अपने भाषण में की। और उस झूठा सच की लाखों प्रतियां बिकीं उसका अनुवाद हुआ और उसका पुनर्मुद्रण भी होता चला जा रहा है। उनकी साहित्यिक महत्ता किस चीज में है, हिन्दी साहित्य का जो इतिहास जानते हैं उनको पता है कि प्रेमचन्द हिन्दी में अग्रणी उपन्यासकार थे। उन्हें आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी लेखक कहा गया। उनके यहां आदर्श भी था और यथार्थ भी था। गोदान तक आते आते उनके आदर्शों पर से थोड़ी श्रद्धा कम हो गई थी और वह समाजवाद की तरफ बढ़ रहे थे। यशपाल ने उस यथार्थवाद को और भी पक्का कदम दिया, आगे बढ़ाया और आदर्शोन्मुखता का कुहासा जो था, उसे और भी अधिक स्पष्ट किया। उसकी उन्होंने शव परीक्षा की। उन्होंने तर्क की भाषा में न्याय को प्रस्तुत किया। जब पहला उनका संग्रह निकला तो आचार्य नरेन्द्र देव ने लिखा— इनकी कलम में यह शक्ति है कि समाज की जितनी बुराइयां होती हैं, जो नासूर होते हैं, उनको यह खोल कर रख देते हैं। इस

ढंग से रखते हैं कि उसका पता नहीं चलता कि कब समाज के अन्दर कौन सा परिवर्तन लाना है। उन कारणों को कहानी के द्वारा, उपन्यास के द्वारा अपनी कलम से स्पष्ट करते थे। यशपाल की लेखनी की विशेषता यह थी कि वह जनसाधारण की भाषा में जनता के प्रश्नों को ले कर चलते थे।

उन्होंने बार बार लिखा है कि जितने भी पात्र हैं वह मेरे आसपास के लोग हैं। उन्हीं को मैं अपने साहित्य में लिखता हूं उन्हीं का वर्णन करता हूं। वही सामान्य जन हैं। वही शहर की बस्ती के रहने वाले लोग हैं। वही पर्दा कहानी है या सार कहानी है, उसी को आप देशद्रोही में देखते हैं। उन्हीं सुपरिचित चेहरों को आप बार बार देखते हैं। उनमें कोई शक्ति थी ऐसे चित्रण बनाने की। यह यशपाल की बहुत बड़ी ताकत है। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास को और आगे ले जाने वाले, बढ़ाने वाले, लेखक यशपाल थे। डिकिन्स की शताब्दी इंग्लैण्ड में मनाई गई। डिकिन्स जब जिन्दा था तो उसे लोगों ने कहा कि यह कोई उपन्यासकार नहीं है। बच्चों के बारे में लिखता है, सुधारवादी लेखक है। यही स्थिति रूस के उपन्यासकारों के बारे में भी थी। सच्चाई को डुबो नहीं सकते, जो सच्चाई है वह बराबर बोलेगी। लेखनी में यह शक्ति होती है जो कि ज्वाला की चिन्गारी को सारे विश्व में फ़ैला देती है। यशपाल जी के उपन्यासों में, कहानी संग्रहों में, निबन्धों में, आत्म कथाओं में, आज तक 45 पुस्तकें उनकी छपी हैं। जो 1941 से वह लिखते रहे, उसे बराबर लिखते रहे। उनकी पुस्तकों के अनुवाद, केरल में चले जाएं, वहां मिलेंगे, आन्ध्र में चले जाइए, वहां मिलेंगे। सारे देश भर में उनकी पुस्तकों के अनुवाद आपको मिलेंगे। उनके मन में एक गहरी बात यह थी कि वह समग्र क्रान्ति लाना चाहते थे अपनी कलम के द्वारा। क्रान्ति तब तक पूरी नहीं होगी जब तक व्यक्ति का मन उसके अन्दर से भी नहीं बदलेगा। समाज के लिए क्रान्ति बहुत आवश्यक है, इसलिए यशपाल ने कहा—मेरी लेखनी विवेक के लिए समर्पित होगी। उन्होंने कहा कि रूढ़िवाद, अन्धविश्वास, जात-पात, इन सब बुराइयों को, असमानताओं को दूर करूंगा। यशपाल जैसे क्रान्तिकारी साहित्यकार का आज आप यहां जयन्ती समारोह मना रहे हैं आज मुझे सबकी बड़ी खुशी हुई है, इस अवसर पर मैं आप सब को बधाई देता हूं। धन्यवाद।

Scanned with CamScanner

श्री मन्मथनाथ गुप्त का भाषण

आदरणीय मुख्य मन्त्री जी, शिक्षा मन्त्री जी! दूसरे साथियो ! देवियो और बच्चो !

हम सब, सबसे पहले यशपाल जी ने जो नारा 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का दिया था उसे ऊंचे बोलेंगे—
'इन्कलाब जिन्दाबाद ।' 'यशपाल अमर रहे ।'

मुख्य मन्त्री जी ने अपने भाषण में स्वतन्त्रता का लम्बा इतिहास बता कर मेरे काम को बहुत आसान कर
दिया है । यह जो स्वतन्त्रता हमें मिली है, एक ही व्यक्ति और एक दल के द्वारा हमें प्राप्त नहीं हुई । मंगल
पाण्डेय से ले कर यह संग्राम 90 वर्ष तक चलता रहा । उससे पहले भी चला था परन्तु एक सुविधा के लिए
यह समय मान लिया जाता है कि यह संग्राम सन् 1857 ई० में चला । मैं इस के इतिहास में नहीं जाऊंगा
लेकिन मोटी मोटी दो चार बातें रखूंगा कि यह जो 90 वर्ष का संग्राम चला उसमें 62 वर्ष का इतिहास क्रान्ति-
कारियों के साथ जुड़ा है । इस दौरान सैंकड़ों लोग फांसी पर चढ़े और हज़ारों लोग जेलों में गए । इस सम्बन्ध
में लोगों ने जो तक्लीफ़ें उठाई वे बहुत न्यारी हैं । बहुत से लोग कहते हैं कि क्रान्तिकारियों का जन-सम्पर्क नहीं
था, लेकिन हम आपको एक यही बात बताएंगे कि यतीनदास जो अपने अनशन के 27वें दिन शहीद हुए थे, के
शोक जलूस में छः लाख आदमी थे और उससे भी पहले कन्हैया लाल को कलकत्ता की अलीपुर जेल में फ़ांसी हुई
और उसकी लाश जलाई गई तो जलूस में एक लाख लोग थे । उनकी भस्मी को लूट लिया गया और बंगालियों
ने इस भस्म के बच्चों के गलों के लिये ताबीज बनवाए । यह जन-सम्पर्क क्रान्तिकारियों ने बराबर किया और
सैंकड़ों लोग जो रोज़गार की तलाश में बाहर के देशों में गए थे, को संगठित करके 'गदर पार्टी' बनाई गई थी।
इस का एक बहुत बड़ा इतिहास है और इस इतिहास को, जैसा कि मुख्यमन्त्री जी ने कहा कि, बहुत शर्म की बात
है, हमेशा छोटा दिखाने की कोशिश की गई । इतिहास लिखना निष्पक्ष काम है और यह ऐसा नहीं रहा, हमेशा
इतिहास लिखने के लिये अन्दर से लड़ाइयां लड़ी जाती रहीं । जो लोग कहते हैं कि एक विशेष दल ने स्वराज्य
प्राप्त किया उनका मतलब यह है कि वह दल यहां पर हमेशा राज्य करे । आपने देखा कि वह नहीं हुआ ।
मैं आपको बताना चाहता हूं कि लोग बहुत जल्दी भूल जाते हैं । जब स्वराज्य मिला तो नेतागण बहुत ताव में
आए और उन्होंने इतिहास लिखने के लिए एक कमीशन बनाया जिसमें एक बड़े इतिहासकार श्री मजूमदार को
लाया गया । तीन वर्ष तक कमीशन सामग्री इकट्ठी करता रहा । जब सारी सामग्री इकट्ठी हो गई तो देखा
गया कि उस सामग्री के अनुसार सारा आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन हो गया, यहां तक कि सन् 1942 का
आन्दोलन जिसे गान्धी जी ने शुरू किया था, भी गान्धीवाद से प्रेरित नहीं माना गया । वह आन्दोलन भी क्रान्ति-
कारी आन्दोलन हो गया क्योंकि गान्धी जी ने इसके लिए जो हद मुकर्र की थी, वह उस हद से बाहर निकल
गया था, पर सच्ची बात यह है कि जो क्रान्तिकारी थे, कम्युनिस्ट और दूसरे लोग थे, उनका प्रभाव इस
आन्दोलन पर पड़ा था । यद्यपि कम्युनिस्ट उस समय अलग हो गए थे परन्तु उनकी विचारधारा का प्रभाव इस
आन्दोलन पर पड़ा था । इस प्रकार इतिहास लिखने का जो काम है, वह बहुत बड़ा काम है ।

यशपाल जी बहुत बड़े साहित्यकार थे, और मैं तो यही कहूंगा, जैसा माचवे जी ने कहा कि हिन्दी में दो
ही ऐसे साहित्यकार हुए हैं जिनको लेकर हम दुनिया के सामने जा सकते हैं । उनमें उपन्यासकार यशपाल जी
हैं । यशपाल जी की हर एक पुस्तक ऐसी है जिसे संसार की किसी भी भाषा में अनूदित किया जा सकता है।
उनकी ज़िन्दगी के बारे में लोग बहुत कुछ जानते हैं । उन्होंने जो भी साहित्य लिखा उसमें कोई भी पुस्तक ऐसी

नहीं है जो कि नोबल प्राइज़ से कम स्तर की हो । हिन्दी वालों को यह समझने के लिये कि, यशपाल जी कितने
बड़े साहित्यकार थे और उनका साहित्य कितना ऊंचा था कम से कम 20 वर्ष का समय लगेगा । तो आप
यह समझ लीजिए कि यशपाल केवल साहित्यकार ही नहीं थे बल्कि वे इस समाज का आमूलचूल परिवर्तन करना
चाहते थे और वे कहते थे कि समाज को सचमुच समाजवादी समाज होना चाहिये । उन्होंने एक पुस्तक लिखी—
गान्धीवाद की शव परीक्षा । उन्होंने गान्धीवाद पर क्यों चोट की ? इसलिए कि गान्धीवाद की आड़ में बहुत
से लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं । यह न समझिए कि यशपाल जी क्रान्तिकारी थे या मैं क्रान्तिकारी
हूं इसलिए हम यह बात कहते हैं । दिनकर एक कवि थे उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि गान्धीवाद का
इस्तेमाल हमेशा प्रतिक्रियावादी लोग करेंगे । उनकी कविता है—

हारे हुओं का गान्धी चौकीदार नहीं है ।
सर्वोदय का दूत किसी के संचय का पहरेदार नहीं है ।

दूसरी भयंकर बात जिसे विद्वानों को समझना चाहिये वह यह है कि गान्धीवाद और क्रान्तिवाद में परस्पर
विरोध रहा । कैसा विरोध रहा, गान्धीवाद का जन्म ही क्रान्तिवाद का विरोध करने के लिये हुआ । वह कैसे
हुआ, सन् 1910 के करीब लन्दन में मदन लाल ढींगरा ने एक अंग्रेज़ अफ़सर को गोली चला कर मार डाला।
अंग्रेज़ी साम्राज्य में इस प्रकार गोली चलने के कारण अभियुक्त को फांसी की सजा हुई । इस बात की सारे
संसार में पब्लिसिटी हुई । गान्धी जी इस वक्त तक अहिंसा के विचार प्रकट कर चुके थे । उनको भय हुआ और
जल्दी ही उन्होंने एक माला जपी । बहुत लोग नहीं जानते, गान्धीवादी भी नहीं जानते, मुझे तो दुःख है कि जो
लोग जिस बात को कहते हैं, उस बात को पढ़ते नहीं । गान्धी जी ने उस प्रभाव में एक लेखमाला लिखी जिसका
नाम उन्होंने 'हिन्द स्वराज' रखा । इस विचारधारा का गान्धीवाद में उतना ही महत्व है जितना मार्क्सवाद का
कम्युनिस्टों के लिये । इसमें थोड़े में सारा गान्धीवाद समा जाता है । तो दोस्तो, यशपाल जी ने यह जो 'गान्धी-
वाद की शव परीक्षा' लिखी है उसे न भुलाइए । आज मैं देश की राजनीति में नहीं जाना चाहता परन्तु आज
देश को विचारों के सम्बन्ध में सावधान होना है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद, प्रतिक्रियावाद हमारा पीछा कर रहा
है । ऐसे समय में यशपाल को नहीं भुलाया जा सकता । मैं इतना बढ़िया समारोह आयोजित करने के लिए हिमाचल
सरकार को बधाई देता हूं । धन्यवाद ।

(समारोह की शेष कार्यवाही अगले अंक में पढ़िए)

भारतीय राजभाषा सम्मेलन १९७८

भूमिका

भारत सरकार के राज-भाषा विभाग के तत्वावधान में विज्ञान भवन दिल्ली में त्रिदिवसीय राजभाषा सम्मेलन पहली मार्च से 3 मार्च, 1978 तक आयोजित हुआ।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय में राज-भाषा विभाग स्थापित है। यह विभाग केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी निदेशालय से पृथक है। दोनों में कार्यों का विभाजन है। भारत सरकार की राजभाषा हिन्दी है। अंग्रेजी के प्रयोग की अनुमति दी हुई है, अंग्रेजी को सहचरी राजभाषा का दर्जा बिल्कुल नहीं है। अतः केन्द्र सरकार का राजभाषा विभाग सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने और उसके लिए सुविधाएं जुटाने का कार्य करता है। मुख्यतः इसके कार्यक्षेत्र में भाषा नीति, अनुवाद और प्रशिक्षण है। साहित्य पक्ष शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी निदेशालय के पास है। साहित्य अकादमी रवीन्द्रभवन दिल्ली भी साहित्य कार्य करती है।

भारत संघ के राज्यों को यह संवैधानिक अधिकार है कि वे अपने राज्य में प्रचलित किसी भाषा को अपने राज्य की राजभाषा बना सकते हैं अथवा यदि कोई राज्य चाहे तो अपने यहां राजकाज के लिए संघ की राज-भाषा हिन्दी को भी अपना सकता है।

२. हिन्दी की स्थिति

भारत में हिन्दी की स्थिति निम्नलिखित रूप में है:—

(क) भारत संघ की स्वीकृत राजभाषा;

(ख) भारत के किन्हीं राज्यों की प्रादेशिक भाषा;

(ग) भारत के किन्ही राज्यों अथवा जनपदों में मातृभाषा;

(घ) भारत के किन्हीं राज्यों में भारत की राजभाषा होने के नाते, तथा भारत के चित्रपट की मुख्य प्रेषणीय भाषा होने के नाते वहां की समर्थित और समादृत भाषा;

(ङ) भारत के किन्हीं राज्यों में मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा से अलग केवल स्वीकृत राजभाषा; और

(च) समूचे भारत में मेलों मठों, बसों-रेलों, तीर्थों कुम्भों, में सामान्य जनता की प्रयोग-भाषा।

३. सम्मेलन का परिचय

भारत के कुछ एक राज्यों में हिन्दी ही राज-भाषा है और शेष ने अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा को राजभाषा के रूप में अपनाया गया है। हिन्दी और अन्य प्रादेशिक राजभाषाओं का राजकाज में प्रचालन और उनका सहयोजित विकास एक परस्पर सम्बद्ध विषय है। अतः इस सम्मेलन में हिन्दी तथा अन्य राजभाषाओं पर संयुक्त और सहयोजित विचार विमर्श किया गया। विचार विमर्श के लिए सभी राज्यों से प्रतिनिधि आमंत्रित किये गए थे, यथा—बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, जम्मू-काश्मीर, अंडमान,-निकोबार गोआ, दमन दियू, चण्डीगढ़, आंध्रप्रदेश, तमिलनाड, कर्नाटक, केरल, पांडीचेरी, लक्ष्य द्वीप, असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, अरुणाचल, मिजोरम, सिक्किम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल।

४. सम्मेलन की कार्यसूची

इस सम्मेलन में निम्नलिखित विषयों पर विचार विमर्श हुआ:—

(1) सरकारी काम काज में भारतीय भाषाओं का प्रयोग ..समस्याएं और समाधान

(2) सरकारी उपक्रमों में भारतीय भाषाओं का प्रयोग ..समस्याएं और समाधान

(3) यांत्रिक सुविधाएं—प्रशिक्षण और अनुवाद,

(4) लोक सेवाओं में भारतीय भाषाएं,

(5) विधि क्षेत्र में भारतीय भाषाएं।

५. कार्यवाही का सारांश

(क) दिनांक प्रथम मार्च 1978 बुधवार प्रातः नौ बजे विज्ञान भवन के मुख्य हाल में इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत के प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई के प्रवचन के साथ हुआ। उन्होंने कहा कि भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता अर्थात् 1947 से पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात दक्षिण से आरम्भ हुई थी, फिर बंगाल से आरम्भ हुई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के राज्यों की अलग-अलग भाषाएं बनीं, इसमें फायदा भी है, कोई आपत्ति नहीं। परन्तु अपनी-अपनी सहूलियत के साथ-साथ देश की समूची जरूरत भी देखनी होती है। किसी न किसी मात्रा में प्रत्येक नागरिक को इस दिशा में सोचना चाहिए और उदारमना व्यक्तियों को अधिक सोचना चाहिए। अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत के गृहमंत्री श्री चरण सिंह ने कहा कि अंग्रेजी राज के समय तो अपनी भाषाओं के साथ स्नेह और सत्कार का भाव था परन्तु अंग्रेजी राज की समाप्ति के बाद हम भारतीयों का मोह अंग्रेजी और अंग्रेजीयत के प्रति अधिक हो गया और अपनी भाषाओं के प्रति हमारा आदरभाव कम हो गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हम में अपनेपन का एक गौरव भरा था, वह अब रीत गया है, खाली हो गया है। आत्मगौरव और अपनेपन की गरिमा प्रत्येक देश के लिए आवश्यक होती है, उसी गरिमा में अपनी भाषा का प्रयोग और उनका प्रचालन एक महत्वपूर्ण तत्व है।

Scanned with CamScanner

शोक प्रस्ताव

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की सामान्य परिषद् की आज दिनांक २० जनवरी, १९७८ की यह बैठक दो महान् साहित्यकारों डा० श्याम परमार तथा महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त के असामयिक निधन पर शोक व्यक्त करती है और शोकसन्तप्त परिजनों को सम्वेदना-संदेश देती है तथा दिवंगत आत्माओं की शान्ति की प्रार्थना करती है।

राजकीय मुद्रणालयशिमला 2224 ए०पी०एल०/77–30-3-78—500

tharahkardu.in

H.A.A.C.L. R.N. 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि0 प्र0 द्वारा पत्रांक इ डी एन एच 6(8)—6(3) 1/75, दिनांक 24 फरवरी, 75 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

2. निदेशक, पंचायती राज विभाग, हि0 प्र0 द्वारा पत्र संख्या 7-3/66 पंच-3, दिनांक 21 जुलाई, 1977 के अनुसार प्रदेश के खण्ड विकास तथा पंचायत पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

उप-नियन्त्रक, मुद्रण तथा लेखन सामग्री हि0प्र0 द्वारा मुद्रित तथा हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, परीमहल, शिमला–9 द्वारा प्रचारित ।